http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुख सूत्र प्रवचन

भाग 25

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[पञ्चविंश भाग]

●

(प्रवक्ता–अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी)

●

प्रमाण और प्रमाणाभासकी प्रसिद्धिसे सिद्धान्तोंके समर्थन व निराकरणकी व्यवस्था विधिके वर्णनका उपक्रम––जीवोंकी हितकी व्याप्ति हो और वे अहितसे दूर हटें, इस प्रयोजनके लिये यह आवश्यक था कि ज्ञान और ज्ञानाभास का अर्थात् प्रमाण व प्रमाणाभासका लोग स्वरूप समझें, क्योंकि ज्ञानसे तो हितकी प्राप्ति होती है और अहितका परिहार होता है और ज्ञानाभाससे अहितमें लगता है जीव और हितसे दूर हटता है अतः प्रमाण व प्रमाणाभासका स्वरूप ज्ञातव्य है इस प्रयोजनको लेकर प्रमाण और प्रमाणाभासका स्वरूप बताया। उसके भेद, विषय सख्या और फल आदिक बताये। प्रमाण और प्रमाणाभास इन सब अंगोंके वर्णन करनेके बाद अब जाने हुए प्रमाण और प्रमाणभासके स्वरूपका फल दिखाते हैं अर्थात् प्रमाणसे तो सिद्धान्तका बोध होता है और प्रमाणाभाससे उल्टाज्ञान होता है तो उससे फिर प्रतिपादन और प्रतिपाद्यके बीच, वदी और प्रतिवादीके बीच किस प्रकारसे किसका सिद्धान्त पुष्ट हुआ और किसका सिद्धान्त गिर गया इन सब बातोंका जिसमें वर्णन है ऐसा अब यह प्रसंग इस सूत्रमें प्रारम्भ होता है।

प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ॥६–७३॥

प्रमाण और प्रमाणाभासके स्वरूपके परिज्ञानका सार्वजनिक प्रयोजन प्रमाण और प्रमाणाभास अर्थात् वादी किसी बातको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण दे और प्रतिवादीके कहे हुए प्रमाणमें दोष बताये तो वादीके द्वारा जब अपने सिद्धान्त के समर्थन करने वाले प्रमाणकी बात सिद्ध हुई तो उससे वादीका तो सिद्धान्त सिद्ध होता है सो उसका भूषण है और वह प्रतिवादीके लिए दूषण बन जाता है, क्योंकि वादीका जो समर्थ वचन है, प्रमाणरूप है उसकी पुष्टि होनेसे वादीके मंतव्यकी सिद्धि हुई सो वादीको भूषण हुआ और प्रतिवादीके लिए वही दूषण बन गया अर्थात् प्रतिवादीके मंतव्यका निराकरण हुआ। जब प्रतिवादीने कोई वचन कहा और उसको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वादीने प्रमाणाभासके रूपमें उपस्थित कर दिया, उस प्रकरणमें दोष बता दिया तो प्रतिवादीके लिए तो वह साधनाभास हो गया और वादीका भूषण बन गया। अथवा वादी ही कोई बात ऐसी कह दे कि जो अयुक्त हो, प्रमाणसिद्ध न हो, प्रमाणासिद्ध प्रमाणाभास हो तो वह वादीके लिए साधनाभास हो जाता है। और तब प्रतिवादीके लिए वह भूषण हो जाता है। इसमें प्रतिवादी प्रसन्न होता है कि वादीके बताए हुए प्रमाणमें दोष आ जाय।

वादमें दूषण और भूषणका रूप — जब प्रमाणकी कोई बात प्रतिपादित विधिसे वादीने रखी और बात भी यथार्थ है उसको प्रतिवादीने सदोषरूपसे जाहिर किया—तुम्हारे प्रमाणमें यह दोष आता है, पर दोष था नहीं। तो ऐसे प्रमाणका प्रसंग आनेपर वह वादीका तो साधक बन जाता है और प्रतिवादीके लिए दूषण बन जाता है और जब वादीने कोई प्रमाणाभास ही कह दिया, प्रमाणरूप न था, मिथ्याज्ञानरूप है ऐसा प्रमाणाभास उपस्थित कर दिया और उस प्रमाणाभासको जब प्रतिवादीने बता दिया कि यह सदोष है इसमें अमुक दोष आता है तो जब प्रमाणाभासको सदोषरूपसे प्रतिवादीने जाहिर कर दिया तब वह प्रमाणाभास वादीके लिए तो दूषण बन गया और प्रतिवादीके लिए भूषण बन गया। वादीने कोई प्रमाणकी बात कही और प्रतिवादीने उसे दोषरूपमें उपस्थित कर दिया कि इसमें तो दोष आता है और वादीने उन दोषोंका परिहार कर दिया तो ऐसी स्थितिमें ही वह प्रमाण वादीके लिए दूषण है। इसी प्रकार वादीने प्रमाणाभासको उपस्थित किया और प्रतिवादीने उस प्रमाणाभासमें दोष डाला कि इसमें अमुक प्रकारका दोष है और उसके दोषका निराकरण वादी न कर सका। तो ऐसी स्थितिमें वादीके ही द्वारा कहा गया प्रमाणाभास रूप वचन वादीके लिये दूषण बन गया और प्रतिवादीके लिये भूषण बन गया। इस तरह निर्दोष प्रमाण कोई उपस्थित करे तो उसका वह वचन समर्थ वचन है और इसी कारण वादीकी जीत है और उस प्रामाणिक वचनमें प्रतिवादीने दोष उपस्थित किया और उन दोषोंका परिहार कर दिया तो इसमें वादीकी जय है और कदाचित् वादी प्रमाणाभास बोल दे और इसमें प्रतिवादी दोष बताये और उन दोषोंको वादी दूर न कर सके तो इसमें वादीका पराजय है और प्रतिवादीका जय है। इस प्रकार समर्थ वचनसे अर्थात् निर्दोष वचनसे तो जय होती है और सदोष वचन व्यवहार से पराजय होती है।

चतुरङ्गवाद और उसमें जयपराजयकी व्यवस्था उसका स्पष्ट रूपक यह है कि जय पराजयकी जहाँ व्यवस्था बनायी जाती है वहाँ चार अंग हुआ करते हैं एक तो वादी, दूसरा प्रतिवादी, तीसरा सभाके लोग और चौथे सभापति। ये चार अंग होनेपर वादका रूप बनता है, जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं, वाद विवाद कहते हैं। उस परिस्थितिमें ये चार अंग होने चाहियें —वादी, प्रतिवादी, सभासद (दर्शकोंका समूह)

Version 1

और सभापति (निर्णायक)। तो ऐसे चतुरंगवादको स्वीकार करके वादी और प्रतिवादी उस सभामें उपस्थित हुए। उसमें वादीने जो कि प्रमाण और प्रमाणाभासके स्वरूपका जानकार था भली तरहसे अपने पक्षकी सिद्धिके लिए प्रमाण उपस्थित किया। जिस भी विषयपर चर्चा चलती थी उस विषयका प्रमाण दिया और प्रतिवादीने जो कि स्वरूपको अच्छी तरह जानता न था, उसने प्रमाणाभास उपस्थित किया। तो उस स्थितिमें जब प्रमाणमें और प्रमाणाभासमें दोष उपस्थित किया और दोषको दूर कर दिया वादीने, तो वह वादीके लिए तो साधक बना और प्रतिवादीके के लिए दूषण बना और दोष दूर न किया जा सका। तो वादीके लिए दूषण बना और प्रतिवादीके लिये भूषण बना अथवा एक और प्रकारसे भी सोचिए प्रतिवादीने जो कि स्वरूपका भली प्रकार निश्चय नहीं कर पाया था और उसने वादीके दिए गए सम्यक प्रमाणमें भी दोष दिखा करके उसे प्रमाणाभास बताया और जिसने उसके स्वरूपका निश्चय कर लिया था ऐसे अन्य प्रतिवादीने प्रमाणाभासमें प्रमाणाभासता दिखायी। ऐसे समयपर जो दोष निवारण करके निर्दोष साबित कर सका उसकी तो जय हुई और जो दोषका निराकरण न कर सका उसकी पराजय होती है ?

वादमें जय पराजयकी व्यवस्था—निष्कर्ष यह है कि जिसके वचन समर्थ है प्रमाण और युक्तियोंसे भली भाँति सिद्ध है उसके तो सिद्धान्त की जय होती है, और जिसका वचन वस्तुस्वरूपसे विपरीत है और इस कारण उसकी यथार्थ सिद्धि नहीं की जा सक रही है तो उसका सिद्धान्त गिर जाता है। यहाँ परमार्थ दृष्टिसे जय पराजयके प्रसंगमें मान्य सिद्धान्त कौन है अमान्य सिद्धान्त कौन है इस प्रकारके परिज्ञान करनेको ही जय और पराजय कहते हैं। लेकिन जब शास्त्रार्थका रूप हो जाता है तो इस तथ्यको स्वीकार करने वाला कौन होता है ? बिरले ही पुरुष होते हैं। प्रायः करके लोग जिस किसी भी प्रकारसे तथ्यके विपरीत भी घोषणा करके तभी लोग यह जान सके कि इसमें इसकी जय हुई है और इसकी पराजय हुई है और इसकी पराजय हुई है, इसके लिए तत्पर रहते हैं, किन्तु तथ्यदृष्टिसे यदि सभी दार्शनिक लोग और निर्णायक लोग एक हितकी वाञ्छासे ही सुन रहे हों, किसी का हठ न हो, प्रमाण और प्रमाणाभासके स्वरूपकी विधिसे उसमें सदोषता और निर्दोषता प्रसिद्ध करे तो वह है वास्तवमें जय और पराजयकी व्यवस्थाका कारण। इस प्रकार प्रमाण और प्रमाणाभासके माध्यमसे शुद्ध सिद्धान्तका प्रतिपादन और अशुद्ध सिद्धान्तका निराकरण किया जाता है।

वादमें जयपराजयव्यवस्थानिबन्धनत्वका शंकाकार द्वारा प्रतिषेध—शंकाकार नैयायिक कहता है कि जो जय पराजयकी व्यवस्थाके कारणके सम्बन्धमें यह बताया गया है कि चतुरंगवादको स्वीकार करके फिर जो प्रमाण प्रमाणाभासका विवेचन है वह जय पराजयका कारण है। सो यह बात अयुक्त कही गयी है, क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाद कोई विजिगीषु पुरुषोंका विषय नही होता । विजगीषु उसे कहते हैं जो शास्त्रार्थ करके जीतनेकी इच्छा करने वाला होता है। वाद जय पराजयका विषय नही हुआ करता है इसलिए वादमें चतुरंगता असम्भव है। जीतनेकी इच्छा न होनेसे उन सभ्य आदिकके प्रयोजनोंका अभाव है वादमें । वादमें भले ही लोग बैठे रहें सुननेके लिए किन्तु बोलने वाला और मुख्य सुनने वाला इन दोनोंका वीतरागताकी ओर भाव रहता है। आत्म-कल्याणकी दृष्टिसे जो कहा जाय सुना जाय उसे वाद कहते हैं। तो वादमें चतुरंगपना सम्भव नही है। अर्थात् वादी, प्रतिवादी, सभासद् और सभापति इन चार का कोई प्रयोजन नही है। क्योंकि वादमें जय और पराजयका विषय ही नही है। गोष्ठीका रूप है वाद । बोलने वाला बोलता है, सुनने वाला सुनता है और सबका एक ही ध्येय है कि वीतरागता प्रकट हो, आत्महित जगे, ऐसे आत्महितकी कथामें सभापतियोंका क्या अवकाश है ? वाद जयकी इच्छा वालेके नही हुआ करता, क्योंकि वाद से केवल वीतरागका ध्येय होता है प्रभुभक्तिका, तत्त्वज्ञानका । वाद तत्त्वके निश्चयकी संरक्षणताके लिए नही है, वह तो तत्त्वज्ञानके लिए है आत्महितके लिए है। जो तत्त्व निश्चित किया गया है वही रह जाय, उसमें कोई बाधा न दे सके, कोई उसे दूषित न कर सके ऐसी दृष्टि तो जीत हारके प्रसंगमें हुआ करती है, वादमें नहीं हुआ करती। जीतनेकी इच्छा रखने वाले पुरुषोंके अतिरिक्त वादी और प्रतिवादीके वाद नही बनता किन्तु वह तो एक शास्त्रार्थका रूप होता है और उसमें वाद काम नही देता । वहां पर तो जल्प और वितंडा ये काम देते हैं, जय पराजयके प्रसंगके लिए सीधे सादेपनसे काम नही चलेगा। वहाँ तो वितंडा हो और जल्प हो, दोंदा पट्टी भी हो, जो कुछ बात कहे उसका कहीं अन्य अर्थ लगाकर, अप्रसंगके अर्थको बताकर उसे सनिन्दा किया जाय, ये सब छल जाति निग्रहके प्रयोग किए जायें इनसे जय पराजय होती है। वादमें यह कहाँ होगा ? वादमें तो तत्त्वज्ञानकी कथा होती है वीतरागताकी कथा होती है। अतः यह कहना अयुक्त है कि चतुरङ्गको स्वीकार करके जय पराजयकी व्यवस्था बनती है।

वादमें विजिगीषुके अविषयत्वका और जल्प वितण्डामें विजिगीषुके विषयत्वका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन — जो चीज विजिगीषु पुरुषोंके लिये बनती है उसका रूप वादका नहीं रहता । जैसे जल्प और वितंडा है ये वाद रूप तो नहीं हैं। किसी भी बातको वादी एक साधारणरूपसे रख रहा है उसमें कोई अर्थ निकालकर प्रकृतको छोड़ करके किसी अन्य अर्थका प्रयोग करके चुप करना और जैसा दोष प्रतिवादी कहता है जबरदस्ती। कोई, सभ्य लोगोंको रुच जाय इस तरहकी मजाकसे चुप करना । ये सब जल्प और वितंडा कहलाते हैं। अप्रासंगिक यहाँ वहाँ की बात जोड़कर जनताका ध्यान बांट देना और तथ्यको हटा देना इसको वितंडा कहते हैं तो वाद विजगीषु पुरुषोंके लिए नहीं होता, किन्तु जो आत्महिताभिलाषी हैं, उदासीन पुरुष हैं, तत्त्वज्ञानके इच्छुक हैं वाद उनके लिए है। विजगीषा जहां बनती जीत और हारका प्रसंग वहां किया जाता है जहां निश्चित तत्त्वके संरक्षण करनेकी

Version 1

गर्ज पड़ी रहती है यह बात मिट न जाय, जो तत्त्व बताया है वह किसी तरहसे गिर जाय, वही सिद्ध हो। दूसरेकी बात सिद्ध न हो, इस प्रकारकी रक्षाके लिए जल्प वितंडा तो समर्थ हैं, पर वाद नही समर्थ है। सीधे सादे तौरसे ज्ञानकी बात करना इसमें ताकत नहीं है कि वह जीत हारका प्रसंग ला सके जल्प व वितण्डाकी जय पराजयकी व्यवस्थाकी कारणका साधक प्रयोग भी है कि जल्प और वितंडा ये दोनों तत्त्व निश्चयकी रक्षाके लिये होते हैं और ये इस तरह काम देते हैं कि जैसे खेतकी रखवालीके लिए बाड़ काम देती है। बाड़को खेतके चारों ओर गाड़ दिया जाता है तो उससे, उन काटोंकी डालियोंका आवरण करनेसे खेतमें बोये हुए अंकुरोंकी रक्षा होती है, इसी तरहसे जिस बातको कह दिया गया है, तत्त्व बता दिया गया है उसकी करनेमें रक्षा जल्प और वितंडा काम आता है।

जल्प वितण्डासे जय पराजय करनेकी आशंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात असंगत है, कि वाद विजगीषु पुरुषका विषय नही है। यह बात यों असंगत है कि जीत हार कहीं नामके लिए या धन सम्पदा बढ़ाने लिए नही है किन्तु जीत हारका अर्थ इतना ही है कि यह तत्त्व तो समीचीन है हितरूप ? और यह तत्त्व हितरूप नही है इतनी ही बात समझमें आना यहाँ तक ही प्रयोजन वादका। और इसके आगे जो कुछ प्रयोजन है वह तो लड़ाईका रूप है। विजगीषु-ताकी जीत हारकी दृष्टि रखना और जिस किसी प्रकार हो, इसे चुप करना इसमें समाज कल्याण नही है और न वादी प्रतिवादका कल्याण है, जैसे कोई दो पुरुष लड़ते हैं तो लड़ने वाले लोग यह ख्याल थोड़े ही रखते हैं कि कहीं इसकी टाँग न टूट जाय अथवा इसकी आँख न फूट जाय ? कोई लड़ने वाला दूसरे लड़ने वालेके प्रति इस प्रकारका दयाभाव थोड़े थोड़े ही रखता है। वे तो यह देखते हैं कि ये कई हजार आदमी हमारे पास खड़े हैं और इनकी निगाहमें मैं हारा कहलाऊँ तो यह तो एक मरण जैसी बात होगी। तो उस समय जीतके लिए जो उपाय बन सकता है वह सब करना पड़ता है लेकिन विद्वान पुरुषोंके लिए यह चीज नही है। वादसे तत्त्वज्ञान भी बढ़ता है, कल्याणमार्ग भी मिलता है और उसीमें जय पराजयकी बात समायी हुई है। जय परा-जयका उद्देश्य अगर दुनियाकी निगाहमें अपने आपका बड़प्पन करनेका बनाया है तब तो वह ज्ञानमार्गसे बाहरी बात है। यों तो चाहे शरीरसे कुस्ती लड़ले, चाहे हथियारों से युद्ध करले चाहे वार्तालाप करले, जीत हारकी मुख्यतामें सबका एक ढंग है, कोई कल्याणकी चीज नही है। विजगीषु पुरुषका भी विषयवाद है, तत्त्वज्ञानियोंका भी प्रयोजनवाद है। यदि वादमें अविजिगीषु यर्थात् जो जीतने हारनेकी इच्छा नही रख रहे है, जिसे लोग कहते हैं बूढ़े पुराने लोग धर्म साधना कर रहे हैं, शास्त्र सुन रहे हैं ऐसे ही लोग विषय हैं, वादके यह बात असिद्ध है। प्रयोगसे भी सिद्ध है वाद अविजगीषु पुरुषका ही विषय नही है अर्थात् उदासीन मुमुक्षु भोले भाले सरल पुरुषोंका ही विषय वाद हो सो बात नही है, किन्तु प्रौढ़ विद्वान सबके लिए वाद प्रयोजनीभूत है, और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इसके मायने है दूसरेका निग्रह हो गया। सो यह उपसिद्धान्त रूप निग्रह "सिद्धान्त के अविरुद्ध" इस विशेषणसे जाहिर होता है। जब सिद्धान्तके अविरुद्ध कोई बात हो रही है तो जो अपसिद्धान्त हैं उनका तो निराकरण वहाँ ही हो जायगा। दूसरा और तीसरा निग्रह स्थान है कम और ज्यादह होना। अनुमानमें ५ अवयव होते हैं। उनसे कम अंग बोलना अथवा ज्यादह बोला जाय तो उसपर दूसरा चुप कर देगा। तुम मूर्ख हो, कुछ समझते नही हो, पहिले अपना दिमाग तो सम्हालो। यहां तुम कहनेमें चूक गए। पूरे अंग नही बोल सके। और देखो तुमने यह अग अधिक बोल दिया तो ऐसा कहकर दूसरेका निग्रह किया जाता है ना ? तो यह निग्रह स्थान भी पंच अवयवोंसे उत्पन्न इस विशेषणसे सिद्ध होता है। ५ हों तो ठीक हो, कम हों, ज्यादह हों तो उसका निग्रह हो जायगा और इस ही बाद लक्षणमें "पाँच अवयवोंसे उत्पन्न हुआ" ऐसा जो विशेषण दिया है इसमें हेत्वाभास आदिक ५ निग्रह स्थान सिद्ध होते हैं। कोई पुरुष अगर हेत्वाभासका आश्रय ले रहा हो तो उसे चुप कर दिया जायगा कि तुम गलत बोल रहे हो, लो निग्रह स्थान बन गया, वह बात ५ अवयवोंमेंसे जो प्रतिज्ञा अवयव है उसका ग्रहण करनेसे सिद्ध होती है। एक स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है। वह भी निग्रह स्थान है। कोई ऐसा गलत हेतु वादी बोल जाय कि जो झूठा हो, स्वरूपसे असिद्ध हो तो दूसरा उसमें दोष दिखाकर चुप कर देगा। तो उसका निग्रह हो गया तो यह हेतु अवयवसे जाहिर होता है। अन्वय दृष्टान्त भी एक अवयव है। उससे उत्पन्न होता है ना वाद। तो इस विशेषणसे विरुद्ध हेत्वाभासका संकेत मिलता है। कोई पुरुष विरुद्ध हेतु बोलदे तो उसका निग्रह कर दिया जाता है। व्यतिरेक दृष्टान्तसे उत्पन्न है इस विशेषणसे अनेकान्तिक हेत्वाभासका ग्रहण होता है। "उपनय से उत्पन्न है" इस विशेषणसे कालात्ययापदिष्ट नामक निग्रह स्थान बनता है और निगमनसे उत्पन्न होता है। इससे यह प्रतिपक्ष निग्रह स्थान बनता है तो नैयायिकोंके कहे गए वादके लक्ष्यमें ही निग्रहका संकेत मिलता है। फिर कैसे नही बाद जय और पराजयकी व्यवस्थाका कारण बनता है ?

वादमें निग्रहस्थानोंका निग्रहबुद्धिसे प्रयोग न होनेकी आशंका— शंकाकार कहता है कि वादमें निग्रह स्थान होने पर भी निग्रह बुद्धिसे उनको प्रकट नही किया जा सकता है इस कारण उसमें विजगीषा नही है। विजगीषा कहते हैं जीतने की इच्छाको। किसी वक्तासे हम जीत जायें उसकी बातको गिरा दें, अपनी बातको रखलें इस बुद्धिसे वादमें उन साधनोंका प्रयोग नही किया जाता है। न्याय शास्त्रमें कहा भी है कि तर्क शब्दके द्वारा भूतपूर्वगतिन्यायसे (वादके लक्षणमें जो तर्क शब्द [illegible] है—"प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भ" इस विशेषणमें जो तर्क शब्द दिया है उस शब्दसे) वीतराग कथाका ज्ञापन होता है और उस वीतराग कथाके ज्ञानसे उद्भावन नियमकी सिद्धि होती है। भूतपूर्व गति न्यायका यह अर्थ है कि व्याख्यान करने के समयमें जो विचार उत्पन्न किये जाते हैं उनमें तो वीतरागता रहती है जैसे कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्धान्तकी प्रभावना और अपसिद्धान्तका निराकरण ये सब वादसे प्रकट होते हैं।

वादमें अविजिगीषुओंके अविषयत्वके नियमकी असिद्धि—वाद अविजगीषु पुरुषोंका विषय नहीं है क्योंकि विग्रह स्थान वाला होनेसे, जल्प वितंडाकी तरह। जल्प और वितंडावाद मचाकर करता क्या है कोई दूसरेका निग्रह करना, सनिन्दा करना, और देखने वाले दार्शनिक लोग उसके लिए हारकी ताली पीटने लगें ये सब बातें करते हैं और ये सब बातें जल्प और वितंडासे बहुत सम्भव हैं तो जैसे जल्प और वितंडासे निग्रह होता है (निग्रह कहते हैं दूसरेको सताना, गिराना, बेइज्जती करना कहनेमें दूषण देना, आदिको इसी प्रकार वादमें भी सभ्यताकी सीमामें हिताहितनिर्णायक निग्रह है। जो समझदार विद्वान लोग हैं वे सभ्य वचनोंको, युक्तिपूर्ण वाक्योंको सुनकर सिद्धान्त और असिद्धान्तकी ठिकाई कर लेते हैं, यह सम्यक है यह नहीं ऐसा निर्णय कर लेते हैं तो मुमुक्षुओंकी जिज्ञासुओंकी, विद्वानोंकी दृष्टिमें जीतहार यही कहलाती है और इस ज्ञान रेखासे बहिर्भूत होकर जीतहारकी कल्पना करना एक तरहमें गुण्डागर्दी है। ज्ञानकी रेखामें और बड़े युक्तिपूर्ण समर्थ वचनोंके द्वारा सिद्धान्तको स्थापित करना और दूषित सिद्धान्तका निराकरण करना यह भी तो विद्वान पुरुषोंकी निगाहमें निग्रह स्थानको उत्पन्न करने वाला है। यदि सभी दार्शनिकोंके चित्तमें यह बात आ जाय कि इस जीवनमें जीकर तत्त्वज्ञानका लाभ करना है और इसके लिए ही दर्शन शास्त्र हैं, सिद्धान्त हैं, परस्परकी कथनी है, व्याख्यान हैं। वाद है तो यह वाद सभ्यताकी सीमामें रहकर सत्य कल्याणका कारण बनेगा और आत्महितकी भावना नहीं है किन्तु दुनियावी लोगोंको अपनी महत्ता बतानेका ही उद्देश्य है तो वह जैसे अन्य प्रकारकी लड़ाई है इसी प्रकार यह वचनोंकी लड़ाई हो गयी, ज्ञानसे बाह्य चीज बन गई। किसीके लाभवाली बात न रही। किन्तु वाद एक ऐसा प्रसंग है कि जिसमें कल्याणकी भी बात है, जय पराजयकी भी बात है, निग्रह स्थानकी भी बात है। प्रमाणीक युक्ति सिद्ध कोई बात सुनकर दूषित सिद्धान्तका निराकरण जानें तो क्या इसमें निग्रह नहीं बना। तो वाद एक व्यापक रूप है और उसमें ही जय पराजयकी व्यवस्था है। तथा उसीसे तत्त्वज्ञान आदिकमें लगनेकी व्यवस्था है। पात्र जो जिस योग्य है वह तो योग्यताके अनुकूल उससे लाभ उठा लेता है।

वादमें निग्रहस्थानवत्त्वकी सिद्धि—यह भी नहीं कह सकते कि वादमें निग्रह स्थानवत्त्व होना असिद्ध है। देखो! नैयायिक सिद्धान्तमें वादका लक्षण यह किया गया है कि जो प्रमाण तर्क साधनोपलम्भ (स्वपक्ष साधन व परपक्षदूषण) से युक्त हो, सिद्धान्तके अविरुद्ध हो, पांच अवयवोंसे उत्पन्न हो, पक्ष, और प्रतिपक्षका परिग्रह रखने वाला हो उसको वाद कहते हैं। तो इस वादके लक्षणमें जो विशेषण दिया गया है उससे ग्रह स्थान विसिद्ध होता है। निग्रह स्थान ८ माने गए हैं—एक तो अपसिद्धान्त बता देना, यह बात सिद्धान्तसे गिरी हुई है, ऐसी बात अगर कोई बता सके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुरुष एक शास्त्र पढ़ रहा है, व्याख्यान दे रहा है और सब शिष्य सुन रहे हैं तो उसमें शिष्योंको विचार मिल रहे हैं और वे विचारमें व्यस्त हैं तो उस समय तो वीतराग कथा है। तो जैसे आत्मकल्याणकी इच्छासे एक वीतराग कथामें लग रहे हैं इसी प्रकार वादके करनेके समय भी वीतरागपना रहता है। क्योंकि वादके लक्षणमें जो तर्क शब्द दिया है उससे यह जाना जाता है। तर्क विचारका हेतु होता है और जहाँ विचार चलता है वहाँ वीतराग कथा है। आत्महितकी इच्छासे रागद्वेषरहित तत्त्वकी चर्चा कही जाती है बादमें विजगीषाका दोष नहीं दे सकते। वादके समय भी वक्ता और श्रोता एक वीतरागभाव करनेके यत्नमें रहते हैं इसी कारण उद्भावन नियम बन जाता है अर्थात् अपसिद्धान्त आदिक जो बादमें निग्रहस्थान हैं वे वादके सम्बन्धमें, भाषणके सम्बन्धमें निग्रह बुद्धिसे घटित नहीं किये जाते हैं। एक जाननेके लिये उनको घटित किया जाता है। विचार चले और उस विचारसे किसी तत्त्वका निश्कर्ष लगाया जाय इसके लिये किया जाता है। तब सिद्धान्तके अविरुद्ध और पंच अवयवोंसे उत्पन्न ये जो दो उत्तरपद दिये गए हैं वादके लक्षणमें सो इन उत्तर पदोंमें यद्यपि समस्त निग्रहस्थानोंका उपलक्षण हो जाता है। मायने इन दो विशेषणोंसे सब निग्रहस्थान सिद्ध हो जाते हैं। जैसे कि अपसिद्धान्तके अविरुद्ध कहनेसे अपसिद्धान्त नामका निग्रह स्थान निकल आता है पंच ऐसा संख्याका शब्द होनेसे न्यून और अधिक ये निग्रह-स्थान निकल आते हैं और अवयवोत्पन्न शब्द के देनेसे पांच हेत्वाभास निकलता है। यों ८ निग्रहस्थान इन दो विशेषणोसे निकल तो आते हैं लेकिन वादके सम्बन्धमें अप्रमाण बुद्धिसे परके द्वारा छल जाति आदि निग्रहस्थान प्रयुक्त किए जाते हैं। निग्रह बुद्धिसे नहीं किए जाते हैं।

निग्रहस्थानोंका निग्रहबुद्धि व निवारणबुद्धिसे प्रयोग होनेका शंका-कार द्वारा विश्लेषण— किसीको हराना है, स्वयंकी जीत करना है उस समय जो दृष्टि बनती है और वाकबाण छोड़े जाते हैं, छल जाति सबका प्रयोग किया जाता है वह निग्रह बुद्धि कहलाती है। तो जीतकी दृष्टिमें निग्रह बुद्धिसे इसका उद्भावन होता है लेकिन वादके सम्बन्धमें शास्त्रवाचन आदिकके सम्बन्धमें या व्याख्यानके कालमें ये सब बातें निग्रह स्थान जान तो लिये जाते है, पर निवारण बुद्धिसे उन्हें प्रकट किया जाता है न कि निग्रह बुद्धिसे। निग्रह बुद्धिका अर्थ है कि दूसरेकी पराजय साबित कर देना ऐसा अभिप्राय और निवारण बुद्धिका भाव है जहाँ केवल आत्महितकी इच्छा है, तत्त्वके निर्णयकी वाञ्छा है उसमें कोई दोष देता है, दोष प्रकट करना होता है तो उसे दूर करनेके आशयको कहते हैं निवारणबुद्धि। किन्तु तत्वसे कुछ मतलब नही किन्तु हमारी बात न गिरे, जीत हो, किसी तरह दूसरे प्रतिवादीको चुप करदे, केवल इस भावनासे जो दोषका प्रतिपादन होता है वह निग्रह बुद्धिसे होता है। तो वादमें निग्रह बुद्धिसे यह निग्रह स्थान नही प्रयुक्त किया जाता, क्योंकि हम दोनोंकी याने वादी और प्रतिवादीकी जो वादमें प्रवृत्ति होती है वह तत्वज्ञानके लिए होती है, जीत-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हारके लिए नही होती । यों समझ लीजिए कि चार मित्र एक अपनी भलाईके लिए और तत्वका सही स्वरूप निर्णीत करनेके लिए जो विचार करते हैं, हेतु देते हैं, दोष दिखते हैं वे सब निवारण बुद्धिसे दिखाये जाते हैं, निग्रह बुद्धिसे नही, लेकिन स्पष्ट जय पराजयके निर्णयके लिये किसी दार्शनिकको बैठाया है, निर्णायक चुन लिया है ऐसी स्थितिमें वादी प्रतिवादीका जो परस्परमें वचन व्यवहार होता है और उसमें किसी भी तरह चुप करनेके लिए बात कही जाती है वो वह सब निग्रह बुद्धि कहलाती है । तो वादमें वादी और प्रतिवादीकी जो प्रवृत्ति होती है वह तत्वज्ञानके लिए होती है और साधनाभास, दूषणाभास जो कि जीत और पराजयके कारण होते हैं वे तत्व-ज्ञानके हेतुभूत नही हैं । इस कारण उन निग्रह स्थानोंका प्रयोग वादमें नहीं किया जाता, तब वादमें जय–पराजयकी व्यवस्थाका कोई अवकाश ही नही है । वीतराग कथाका ही प्रयोजन है तब वादमें साधनाभास और दूषणाभासका प्रयोग नही किया जा सकता है ।

वादमें निग्रहस्थानका प्रयोग न होनेकी शंकाका समाधान उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारकी यह आशंका असंगत है क्योंकि जल्प और वितंडा इनमें भी उस प्रकारके उद्भावनका नियम बनाया जा सकता है । क्योंकि जल्प और वितंडाको भी तत्त्वके अध्यवसायका संरक्षण करनेके लिये प्रयोग करना माना है शंकाकारने । अर्थात् शंकाकार जल्प और वितंडाको तत्त्वके निश्चयकी रक्षा करनेके लिए बताया करता है । याने किसीके प्रति छल करके कपट करके । कोई अर्थ बता करके, अप्रासंगिक अर्थका उपदेश करके किसीको चक्करमें डाल देनेको जल्प और वितंडा कहते हैं । और उसे बताते है कि तत्त्वकी रक्षाके लिये जल्प और वितण्डा किया जाता है । तो जब प्रयोजन यह रहा कि तत्त्वके निश्चयकी रक्षा करना है तो वहाँ भी निग्रहबुद्धिसे निग्रहस्थानोंका प्रयोग न हो सकेगा किंतु तत्त्वके निश्चय की रक्षा जल्प और वितंडासे नही की जा सकती । छल जाति निग्र स्थानके प्रयोगसे कहीं तत्त्व निर्णयकी रक्षा होती है । वहाँ तो कोई युक्ति छल आदिकके प्रयोग करके दूसरेको चुप कर देने भरका उद्देश्य रहता है । स्वयं ऐसा मानते भी हैं कि दूसरेको चुप करनेके लिये जल्प और वितंडामें छल आदिकको प्रकट किया जाता है । जल्प वितंडाका ऐसा रूपक समझिये कि जैसे कोई यह कहदे कि यह नवकम्बल वाला देवदत्त आया है । और कोई दूसरा पुरुष कम्बल ओढ़े हुए अपनी गोष्ठीमें बैठनेके लिए आया और उसे देखकर कोई यह कहने लगे कि यह नवकम्बल वाला देवदत्त आ रहा है, और, उस कहने वालेको समिन्दा करनेके लिए कोई कह बैठे वाह रे वाह कहाँ हैं इसके पास ९ कम्बल यों कुछका कुछ अर्थ निकालकर उसे चुप करना यह जल्प वितंडाका रूपक है । और जब जल्प और वितडाका प्रयोग दूसरेको चुप करनेके लिए किया जाता है और दूसरा क्या, दोनों ही जल्प वितंडामें लग जायें, तो चुप करनेकी बात कभी बन ही नहीं सकती । जब छल ही करना है दावपट्टी ही करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है तो कौन गम खायेगा ? जैसा चाहे भाषण करके, शब्द बोलकर अर्थ निकालकर कथाको बढ़ाते ही रहेंगे तो दूसरेको चुप भी नहीं किया जा सकता है। क्योंकि जो असत् उत्तर है असमीचीन उत्तर है ऐसा उत्तर तो सीमारहित है। बोलते जावें दोनों परस्परमें। तो जल्प और वितंडाके द्वारा तत्त्व निश्चय नहीं किया जा सकता न तत्त्वकी रक्षा की जा सकती है। इसलिए वहाँ भी हम यह बात कह सकेंगे कि जल्प और वितंडामें भी निग्रहस्थानका उद्भावन नियम है।

वादमें तत्त्वाध्यवसायके संरक्षणकी समर्थता—अब दूसरी बात सुनिये ! शंकाकारने जो यह कहा था कि वादमें तत्वके निश्चयकी रक्षाका प्रयोजन नहीं है, सो बात असिद्ध है। वाद तत्वकी रक्षा करनेमें समर्थ है, बल्कि जल्प वितंडा तत्वकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं, वह तो केवल एक लड़ाई है और किसी भी तरह निग्रह स्थान बना है दूसरेका, वहां तत्वका निश्चय कहाँ बन सकेगा ? तो यह बात कहना शंकाकारका बिल्कुल गलत है कि वाद तत्वके निश्चयकी रक्षाके प्रयोजनसे रहित है। वाद में ही यह सामर्थ्य है कि वाद तत्वके निश्चयकी रक्षा कर सकता है। उसको प्रयोग और हेतु द्वारा भी सुनो ! वाद ही तत्वके अध्यवसायके संरक्षणका प्रयोजक है क्योंकि प्रमाण तर्क साधनोपलम्भ होनेपर भी और सिद्धान्तके अविरुद्ध होनेपर भी तथा पंच अवयवोंसे उत्पन्न होकर भी पक्ष और प्रतिपक्षके परिग्रहको रखने वाला है। शंकाकार ने वादका लक्षण करते समय इतने शब्द दिये हैं कि जो प्रमाण तर्क स्वपक्ष साधन पर पक्षका दूषणसे युक्त हो, दूसरा विशेषण है जो सिद्धान्तके अविरुद्ध हो, तीसरा विशेषण है जो पंच अवयवोंसे उत्पन्न हो और चौथा विशेषण है कि जिसमें पक्ष और प्रतिपक्षका परिग्रह बना हुआ हो, एक है मनुष्य पूर्व पक्ष वाला, दूसरा है मनुष्य उत्तर पक्ष वाला। वादी अपनी समस्या रख रहे हैं और ये दूसरे प्रतिवादी उसका हल अथवा दूषण कर रहे हैं ऐसे पक्ष और प्रतिपक्षका परिग्रह जहाँ होता है उसे वाद कहते हैं। तो अब देखिये कि इस वादमें तत्वका अध्यवसाय बना ना ? अपने आप बना ? ये सब विशेषण यह सिद्ध कर रहे हैं कि इसमें तत्वका निर्णय होता है और निर्णीत तत्वकी रक्षा की जाती है। इसमें दोंदा पट्टीकी बात नहीं लिखी गई है। तो वादमें ये सब विशेषण बराबर सही पाये जाते हैं और उन विशेषणोंसे, उन हेतुवोंसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि वाद तत्त्व निश्चयको रक्षाके लिए होता है।

यौगसिद्धान्त कथित वादलक्षणस्थ विशेषणोंसे भी वादके तत्त्वाध्यवसाय संरक्षणका समर्थन—प्रमाण दिये जा रहे हैं तो उससे तत्वका ही तो निर्णय किया जा रहा है और तत्वनिर्णयकी रक्षा की जा रही है। जहां तर्क चल रहा है, विचार चल रहा है वहां तत्वके निश्चयकी ही तो बात है। जहाँ अपने पक्षके साधन की बात कही जा रही है अथवा दूसरेके पक्षके दूषणकी बात कही जा रही है उससे निष्कर्ष क्या निकला कि यही तो है तत्वनिर्णय और निर्णीत तत्वकी रक्षा। तो

Version 1

वादमें जो विशेषण दिये गये हैं उनसे भी यह सिद्ध होता कि बाद तत्त्व निश्चयकी रक्षाका प्रयोजक होता है। दूसरा विशेषण दिया है जो सिद्धान्तके अविरुद्ध हो। तो सिद्धान्तके अविरुद्ध कहनेसे एक तत्त्व निर्णय की ही तो बात आयी? वस्तुस्वरूपमें बताया गया हो और जिसके बारेमें स्पष्ट सिद्धान्त बना हुआ है कि अविरुद्ध जो वचन है उसको वाद कहते हैं ना। तो उससे सिद्ध हो जाता है कि वाद तत्त्व निश्चयकी रक्षाका प्रयोजक है। अनुमानके ५ अंग बताये गए हैं प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण, उपनय और निगमन। तो यह पंच अवयवोंका प्रयोग और उससे उत्पन्न होता है जो कुछ बोध वह तत्त्व निर्णयकी रक्षाका संकेत दे रहा है और पक्ष प्रतिपक्षका परिग्रह भी वादमें लग रहा है। एक बोलने वाला है दूसरा सुनने वाला है। सुनने वाला भी बोलने वालेके प्रति बोलेगा और यह वादी भी उस प्रतिवादीके प्रति बोलेगा तो वाद में भी पक्ष और प्रतिपक्ष होता है। जैसे वक्ता कहता है कि देखिये बात ऐसी है यह एक उसका पक्ष हो गया। दूसरा उसमें दूषण देता है, वह मानता नहीं है कि बात यह ठीक है तो वह प्रतिपक्ष हो गया। तो वादमें जब ये सब चीजें हैं और इन चीजों का स्वरूप इस बातका संकेत दे रहा है कि इस वादसे तत्त्वनिश्चयकी रक्षा होगी। तो इससे यह सिद्ध है कि वाद ही तत्त्वकी रक्षा करनेमें समर्थ है। जल्प और वितंडासे तत्वकी रक्षा नहीं होती है। जो इस प्रकारके हेतु वाला नहीं हैं। प्रमाण तर्क और साधनोपलम्भ वाली बात नहीं है, जो सिद्धान्तके अविरुद्ध नहीं है, जो पंच अवयवोंसे उत्पन्न नहीं है। जिसमें पक्ष और प्रतिपक्षका परिग्रह हो नहीं है वह तत्वका निश्चय और तत्वनिश्चयकी रक्षा नहीं कर सकता।

तत्त्वनिर्णयस्थिति—देखिये! तत्वनिर्णय होता किस स्थितिमें? दो बन्धु हैं, वे परस्परमें अपनी समझ बना रहे हैं, उसपर विचार चल रहा है और वहाँ ये सारी बातें आगयीं, वह है तत्वनिर्णयका साधन। तो वादके लक्षणमें जितने भी विशेषण कहे हैं वे जहाँ नहीं हैं वहाँ तत्वके अध्यवसायकी रक्षा भी नहीं है। इससे यह सिद्ध है कि वाद ही तत्वके निश्चयकी रक्षा कर सकता है, अन्य कोई नहीं। जैसे—गाली-गलौज है, इसमें प्रमाण, तर्क, साधनोपालम्भ सिद्धान्तके अविरुद्ध होना, पंच अवयवोंसे उत्पन्न होना, यह बात उनके अन्दर नहीं है। भले ही एक दूसरेको गाली दे रहा है और दूसरा उस गालीका जवाब दे रहा है। तो जैसे वक्ता और श्रोताका सम्बन्ध है परस्परमें—वक्ता बोलता है, श्रोता सुनता है, इसी तरह गाली-गलौजका भी पक्ष और प्रतिपक्षका सम्बन्ध रहता है। एकने गाली दी, दूसरेका ध्यानकर गाली दी तो उसमें पक्ष और प्रतिपक्षका—परिग्रह भले ही हो गाली-गलौजमें लेकिन प्रमाण तर्क, साधनोपालम्भ आदिक बातें उसमें नहीं हैं। तो जैसे गाली-गलौजमें वादके लक्षणमें कहा गया विशेषण नहीं है तो गाली-गलौज तत्व निश्चयकी रक्षाका कारण नहीं माना गया है। गाली-गलौजका क्या अर्थ है? कुछ भी नहीं। खोटी खोटी गाली चार-चार वर्षके बच्चे भी दे लेते हैं। वहाँ कुछ बोध भी नहीं तथा अध्यवसाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है ? एक अधिकरणमें रहने वाला विरुद्ध धर्म जैसे कि शब्द आदिकके आश्रयमें यह नित्य है अथवा अनित्य है ? ऐसे दो विरुद्ध धर्म लिये सो वे दोनों विरुद्ध धर्म पक्ष प्रतिपक्ष हैं। एकका सिद्धान्त कुछ है, उसके ठीक विपरीत दूसरेका सिद्धान्त हो तो वह पक्ष और प्रतिपक्ष होता है। वे परस्पर विरुद्ध हैं एक कालमें हैं अथवा एक काल में रहते हैं तथा अनवसित हैं, विचार कोटिमें पड़े हुए हैं। यहाँ वस्तुका जो वस्तुविशेष हो वही वस्तुधर्म कहलाता है। जैसे शब्दमें नित्यपना भी है, अनित्यपना भी है तो ये वस्तु धर्म कहलाये। तो इसका नाम है पक्ष और प्रतिपक्ष। और, विचार नाम किसका है कि सामान्यसे कोई पदार्थ जान लिया और विशेषसे न जान पाया, उसी सम्बन्धमें विशेषतासे कोई समझ न बना पाये तो उस समय उस विशेषको जाननेमें निमित्तभूत जो कुछ आत्माका वितर्करूप परिणमन है उसको विचार कहते हैं ये पक्ष प्रतिपक्षके विषयभूत हैं। एकाधिकरणका क्या अर्थ है कि इन पक्ष प्रतिपक्षोंका एक अधिकरण है। नाना अधिकरणोंके प्रतिवादी और प्रति वादी विचारमें प्रयुक्त नहीं करता है। एक ही अधिकरणमें देखना है और बोलना है उसे कहते हैं एकाधिकरण। तो यहाँ नाना अधिकरणोंके प्रति विचार प्रयुक्त नही किए गए। क्योंकि उन दोनों धर्मोंमें जो भिन्न भिन्न अधिकरण वाले हैं उन नाना धर्मोंमें प्रमाणकी उत्पत्ति है। अर्थात् दोनों वस्तुधर्मोंका एकाधिकरण होनेपर विचार होता है नाना अधिकरण होनेपर नहीं। जैसे कि बुद्धि अनित्य है, आत्मा नित्य है। तो अनित्यका बुद्धि अधिकरण है और नित्यका स्वात्मा अधिकरण है। याने अनित्यका अधिकरण बुद्धि हुई और नित्यका अधिकरण अपना आत्मा हुआ। अर्थात् बुद्धिमें तो रह रहा है अनित्यपना और आत्मा में रह रहा है नित्यपना। तो यहाँपर यथावत् प्रमाणकी उत्पत्ति होनेसे विचार नहीं चलाया जाता है। यदि अविरुद्ध दो धर्म हुए अर्थात् जिसके सम्बन्धमें कोई विरोध न आता हो तो वह भी विचार कोटिके प्रयोजनमें नहीं आता वादी और प्रतिवादीके लिए। जैसे कहा कि द्रव्य क्रियावान है और गुणवान है तो यह क्रिया तो है अनित्य और गुण नित्य भी है और अनित्य भी हैं। तो ऐसा अविरुद्ध होकर भी विचारके प्रयोजनमें नहीं आता। एक काल है वह पक्ष प्रतिपक्ष। ऐसा कहनेसे भिन्न कालकी चीज विचारमें न आयगी। विचारका अप्रयोजक रहेगा वादी और प्रतिवादी क्योंकि उनमें प्रमाणोपपत्ति है, वह वादका विषय न होगा जैसे क्रियावान द्रव्य और निष्क्रिय द्रव्य ये कालभेदके होनेपर हैं। अतः यहाँ पक्ष प्रतिपक्षका परिग्रह नही उसी प्रकारसे जो अवसित हैं याने निश्चित् हैं वे भी विचारके प्रयोजनमें नही आते क्योंकि निश्चयके उत्तरकालमें इसमें विवाद नही रहता। अतः अवसित तत्वमें वाद नही चलाया जाता, पक्ष प्रतिपक्ष परिग्रहके विवरणमें उसके विशेषणोंका थोड़ा सा यों विश्लेषण किया है।

वादमें ही पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहताकी संभवता—अब उस पक्ष और प्रतिपक्षका परिग्रह क्या है ? ऐसा है यह नियम बने, यह इस धर्मवाला है और यह इस धर्मवाला नही है, इस प्रकारका जो नियम है उसे कहते हैं परिग्रह। तो अब

Version 1

देखो कि प्रमाण, तर्क, साधनोपालम्भ इन विशेषणोंका जल्प और वितण्डामें प्रवेश नही है और इसी कारण पक्ष और प्रतिपक्षका परिगृह भी जल्प और वितण्डामें संभव नही है। इससे यह सिद्ध है कि वादमें ही यह बात सम्भव है उससे ही तत्वके निर्णय और तत्वकी रक्षा हो सकती है। जैसे कि लाभ पूजा प्रसिद्धि भी वादमें ही होती है, इसी प्रकार तत्वनिर्णयकी रक्षा भी वादमें ही हो सकती है। जो पुरुष विद्वान् है, समर्थ वचनका धनी है, प्रमाणका जैसा विशिष्ट साधन है ऐसे पुरुषकी उस वादके कालमें जय होती है इसलिए लाभ भी है, पूजा भी है, प्रतिष्ठा भी है, उसकी प्रसिद्धि है इसी प्रकार वादमें ही तत्वका निर्णय है और संरक्षण भी है। तो वादमें ही जीत और हारकी व्यवस्था बनती है जल्प और वितण्डा में जय-पराजयकी नही बनती।

वादसे तत्त्वनिर्णय होनेके सम्बन्धमें शंका-समाधान— शंकाकारने यह कहा है कि वादसे, सभ्यतापूर्वक विद्वत्ताके साथ वाद-विवाद करनेसे जीत-हारका निर्णय नही होता, किन्तु जल्प वितण्डा छल भरी बात करके ही जीत बनती है और उससे ही दूसरेको हराया जा सकता है और जल्प वितण्डामें ही यह सामर्थ्य है कि वे तत्वके निश्चयका संरक्षण करते हैं। तो उत्तरमें कह रहे हैं कि तत्वनिर्णयका संरक्षण करना वादका काम है, जल्प वितण्डा आदिकका नही, क्योंकि तत्वाध्यवसायके संरक्षण का अर्थ क्या है कि जो तत्व है, जिसका समर्थन किया जा रहा है, जिसका कि लोक-हितके लिए प्रचार किया जाता है, उसका जो निश्चय है, उसकी रक्षाका नाम है— तत्वाध्यवसाव संरक्षण। तत्वनिर्णयकी रक्षा न्यायबलसे समस्त बाधकोंका निराकरण कर देनेका नाम है अर्थात् तत्वमें बाधा कोई देवे उस तत्वको मिथ्या साबित करनेके लिए कोई कुछ बात कहे उसका निराकरण कर देना यह उसकी रक्षा है। तो इस प्रकारकी रक्षा केवल बाधा डालनेसे नही होती कि उसमें बाधायें पेश करे और प्रमाण से बातको न रख सकें। तो बाधायें मात्र देनेसे या जिस किसी भी प्रकार हो, इसका मुँह बन्द करें इससे तत्वनिर्णयकी रक्षा नही होती। अगर केवल बहुत बहुत विवाद करनेसे, दूसरेको परेशान करनेसे, उसका मुख बन्द कर देनेको तत्वाध्यवसायका संरक्षण माना जाय तो लाठी मारकर या चाँटा मारकर उसको दबा देवे, उसका मुख बंद कर देवे तो उसे भी कहें कि तत्वनिश्चयकी रक्षा हुई। यदि केवल बाधा और प्रलाप करने मात्रसे तत्वनिश्चयकी रक्षा मानते हो तो किसीको लाठी, चाँटा मारकर भी तो मुँह बन्द किया जा सकता है, तो उसके भी तत्वनिश्चयकी रक्षा मान लो. पर ऐसा तो नही है।

जल्प और वितण्डासे बाधकोंका अनिराकरण—जल्प और वितंडासे समस्त बाधकोंका निराकरण नहीं किया जा सकता है जल्प और वितंडामें क्या किया जाता है—छल जातिका उपक्रम किया जाता है। अर्थात् उसमें उसका कोई अर्थ निकालकर अनिष्ट अर्थको लगा बैठता अथवा उसके कहनेका ढंग बदलकर कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनिष्ट बात घटा देना होता है इससे बाधाओंका निराकरण नही होता छल और जातिके प्रयोगसे संशय और विपर्ययकी उत्पत्ति होती है अर्थात् प्रलाप करनेसे, व्यर्थ ही अधिक बोलनेसे, छल जातिका प्रयोग करके सनिन्दा करनेसे कहीं तत्त्वका निर्णय नही होता। बल्कि उसमें तो सुनने वालेको संशय और विपर्यय आ जाता है। क्योंकि तत्त्वका निश्चय होनेपर भी दूसरेका मुख बन्द करनेमें ही प्रवृत्ति करनेपर सुनने वाले लोग, प्राश्निक लोग, निर्णय करने वाले लोग तो उसमें संशय करते हैं अथवा वे उल्टा समझ लेंगे कि यह प्रतिवादी कपटका प्रयोग करके वादीका मुख बन्द कर रहा है। इसके तत्व निर्णय है अथवा नही है, ऐसा संशय उत्पन्न होता है अथवा तत्व निर्णय नही है, ऐसा उल्टा बोध कर सकता है। तो दूसरेका प्रलाप करने मात्रसे ऐसा भी पुरुष जिसको तत्व निर्णय नही है, ऐसेकी भी प्रवृत्ति पाई जाती है, इससे छल जाति निग्रह आदिककी विधिसे तत्वका निर्णय नही समझा जा सकता है। जैसे कि जो तत्व को मानते ही नही हैं, जिसे तत्व पल्लव आदिक कहते हैं याने तत्व न मानने वाले लोग जैसे चाहे वचन कहकर अपना पक्ष सिद्ध करते हैं और तत्व मानने वालेका मुख बन्द कर देते हैं तो इससे कहीं तत्व मानने वालेका निराकरण तो न हो जायगा। साथ ही जो छल और अनिष्ट अर्थ लगाकर जो दूसरेकी हार दुनियाको दिखाना चाहते हैं तो बुद्धिमान लोग तो बहकावेमें न आ जायेंगे, वे तो सही युक्त समर्थ वचन ही कर निर्णय करेंगे। तो बुद्धिमान लोगोंकी दृष्टिमें तो ऐसे प्रतिवादीकी प्रतिष्ठा घट जाती है। और फिर पूजा और लाभ भी प्राप्त नही हो सकता। विद्वान लोग तो उसे ही पूज सकते हैं जिसके वचनोंमें प्रमाणता देखें, जिसके वचन समर्थ समझें। पर जो छल करके बेतुके अर्थ लगाकर दूसरेका मुँह बन्द करके अपनी जीत साबित करना चाहते हैं उन का विद्वानोंमें आदर नही है, इससे सिद्ध है कि वाद चतुरंग होता है।

वादकी चतुरङ्गता—चतुरंगके माय यह है कि किसी बातका निर्णय करना है और दुनियाको भी उसका सही निर्णय बताना है तो बहुतसे लोग सुनने वाले होंगे। जिन्हें कहेंगे सभासद और दो बोलने वाले होंगे जिन्हें कहेंगे वादी प्रतिवादी, और एक निर्णायक होगा जिसको सभापति बनाया गया है। तो जीतहारकी व्यवस्थामें चार चीजोंका प्रयोग होता है सभासद, वादी, प्रतिवादी और सभापति। ऐसे चतुरंग वादकी योजनामें फिर वादी प्रतिवादी जो कुछ कहेंगे उससे अपने अपने अभिप्रायकी व्यवस्था बन सकती है। तो यह बात वादसे ही बन सकती है। जैसे लोकमें बहुतसे वाद प्रसिद्ध हैं लेकिन वहाँ कोई प्रतिवादी छल करके बेतुकी बात कह करके अपनी जीत साबित करना चाहेगा तो उन सभासदोंमें जो विद्वान लोग हैं वे तो यथार्थ समझ ही जायेंगे कि इसमें कुछ उत्तर नहीं बन रहा है। ऐसा प्रलाप करके दो अर्थ बनाकर, छल करके दूसरेका मुख बन्द करना चाह रहा है। तो वादमें चार अंग होते हैं। यदि चार अंगोंमेंसे एक भी अंग कम हो तो प्रस्तुत अर्थका निर्णय प्रचार नहीं हो सकता है। जैसे मान लो वादी और प्रतिवादी हो हैं और एक निर्णा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यक भी बैठा है। केवल तीन ही पुरुष हैं तो उससे तत्त्व निर्णयकी बात नहीं बन सकती। उसका निर्णायकने फैसला कर दिया अब उसे न वादीको मानना है न प्रतिवादीको। तो अब उससे निर्णय क्या हुआ? मान लो वादी प्रतिवादी और सभासद बैठे हैं और निर्णायक नहीं है तो उसका निर्णय क्या होगा? वादीने उसपर किसी भी प्रकार बात रोंद दिया तो कोई क्या निर्णय देगा। उसमें जो पक्षपाती होगा उसकी तारीफ करके चला जायगा, पर निर्णय कुछ न होगा। मानलो कि सभासद बैठा है, निर्णायक बैठा है और एक वादी मात्र बोलने वाला है तो निर्णय किस बातका? कोई भी विरुद्ध बोलने वाला है नहीं तो निर्णय किस तरह होगा? तो वाद चतुरंग होता है और उसमें तत्त्वनिर्णयकी व्यवस्था बन सकती है।

चतुरङ्गताके बिना तत्त्वनिर्णयकी अव्यवस्था—जो लोग सभामें बैठे हुए हैं, अहंकारसे ग्रस्त हैं, अभिमानमें बैठे हैं, मर्यादाका उल्लंघन कर रहे हैं और उस समय कोई सभापति है नहीं जिसमें उत्साह हो प्रभुता हो, विचारनेकी शक्ति हो, उदासीन हो। पक्षपात रहित हो, पापसे डरने वाला हो। इस प्रकारका कोई निर्णायक है नहीं, तो वे जो प्रश्न करने वाले लोग हैं अथवा अन्य कोई दार्शनिक लोग हैं उनके बिना नियामकपना तो नहीं बन सकता है। याने सभापति तो नहीं है, निर्णायक नहीं है तो जितने दर्शक हैं उनको कोई निर्णय नहीं दे सकता है और वादी प्रतिवादी जो परस्परमें उत्तर दे रहे हैं उनका कोई नियंत्रण नहीं कर सकता है, और उनका कोई निर्णय भी नहीं बना सकता है। जो प्राश्निक लोग हैं वे पक्षपातसे रहित, विद्वान और वादी प्रतिवादी दोनोंका ही सिद्धान्त जानने वाले और सदोष कथनका निराकरण करने वाले पुरुष वादी प्रतिवादीके सिद्धान्तका निर्णय करनेमें समर्थ होते हैं और वे निर्णायक लोग यों समझिये कि जैसे कि गाड़ीमें जुतने वाले बैलोंकी रस्सी बैलोंका नियंत्रण करती है इसी प्रकार ये प्रास्ताविक लोग उसका नियंत्रण किया करते हैं। तो चार अंगोंमेंसे एक प्राश्निक लोग न हों तो नियंत्रण कैसे हो? और यदि वादी प्रतिवादी नहीं हैं जो कि प्रमाण और प्रमाणाभासके परिज्ञानमें पूर्ण सामर्थ्य रखते हों ऐसे वादी प्रतिवादीके हुए बिना वाद भी कैसे चलेगा? इससे सिद्ध है कि वाद चतुरङ्ग ही होना चाहिए। सभामें सभासद बैठे हों निर्णायक सभापति और बड़े चतुर विद्वान वादी प्रतिवादी भी हों, तब जय विजयकी व्यवस्था बन सकती है, लोगोंको तत्त्वके निर्णयमें घोषणाकी बात बन सकती है।

वादकी चतुरङ्गता होनेपर भी छल जातिसे ही जय पराजयकी व्यवस्थाकी आशंका व उसका समाधान—अब शंकाकार कहता है कि चलो हम माने लेते हैं कि वाद चतुरङ्ग होता है, याने जहाँ वाद विवाद हो रहा हो और उसका निर्णय भी करना हो तो चार चीजोंके बिना नहीं हो सकता। दर्शक याने सुनने वाले लोग और वादी प्रतिवादी जो अपना अपना पक्ष रखना चाह रहे हैं और इस सभाका एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सभापति जो विद्वान है, ये चार अंग बादमें हुआ करते हैं। यह बात हम माने लेते हैं, लेकिन जीतहारकी व्यवस्था छल जाति निग्रहके द्वारा ही हो सकती है। प्रमाण और प्रमाणाभासोंका रखना और उनमें दोष देना और उन दोषोंका कोई परिहार न करे, कोई परिहार करदे, इन बातोंसे जीतहारकी व्यवस्था नही है, किन्तु बेतुकी बातें भी हों, छलकी भी बातें हों, उस कथनमें अनेक विकल्प उठाकर उससे उसके वचनोंका विघात करदे ऐसे अनेक प्रकारके छल जाति निग्रहों द्वारा ही जीतहारकी व्यवस्था बनती है। प्रमाण और प्रमाणाभाससे युक्तियोंसे, जीतहारकी व्यवस्था नही बनती। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात असंगत है, क्योंकि छल आदिक ये तो झूठे उत्तर हैं। कोई वस्तु स्वरूपके उस दोषको दूर करके सही वस्तु स्वरूप सामने रख दे यह सामर्थ्य छलमें नही है। यह तो केवल एक गुस्सामें आकर अनुचित प्रयोग करके दूसरेका मुख बन्द करना है। जैसे कि इन्द्रका आभियोग्य ऐरावत था उसे माना है कि इन्द्रका वाहन है और बड़े विशालकायका है। एक लाख योजनका लम्बा चौड़ा है ऐसा हाथी मानने वालेके विरोधमें कोई प्रतिवादी पुरुष लोगोंके यह शंका डालने लगे कि अरे इतना बड़ा हाथी नगरमें कैसे समाता होगा और कभी वह हाथी विष्टा करदे तो उसके नीचे हजारों आदमी दब जायेंगे, इस तरहसे कुछ भी छल भरी बात बोलकर मुख बंद करके बात कहे तो वह छल आदिक कहलाता है। उससे विद्वान लोगोंको सन्तोष न होगा। जब कि वादी यह बात रख रहा है कि ऐरावत हाथी भी वैक्रियक शरीर का है, देव जातिका है और वैक्रियक शरीरमें यह सामर्थ्य है कि वह ठीक दिख जाय और किसी पदार्थसे छिड़े नहो, छिड़ने लायक शरीर बने तो छिड़ भी जाय। उसमें अनेक ऋद्धियां पायी जाती हैं। तो उसमें हेतुकी अनेक बातें यों ही ढूँढ़ ढाढ़कर ला देना और वस्तु स्वरूपके नातेसे कोई समर्थ वचन न कह सकना, इससे जीतहारकी व्यवस्था नही बन सकती, क्योंकि छल आदिकके प्रयोग तो मिथ्या उत्तर है और मिथ्या उत्तरसे यह बात न बन सकेगी कि अपने पक्षका तो साधन बना लेवे और दूसरे के पक्षमें दूषण दे सके।

छलप्रयोगसे स्वपक्षसाधन व परपक्षदूषणका अभाव—स्वपक्ष साधन और परपक्ष दूषणकी बात छल आदिकके प्रयोगसे नही बनती किंतु युक्तिरक नियंत्रण आदिकसे सम्बन्धित वचन हो, जिसको सुनकर विद्वान पुरुष भी अंगीकार कर लें कि वास्तवमें तत्व इसी प्रकारका है, उससे ही जीत—हारकी व्यवस्था बनेगी। मगर छल जातिके प्रयोगसे न अपने पक्षकी सिद्धि हो सकती न दूसरेके पक्षमें दूषण दिया जा सकता। इसी कारण जीत—हारकी व्यवस्था उससे नही बन सकती और जो छल जाति आदिक तत्वका स्वरूप माना है वह लक्षण भी असंगत है, अपने घर बैठे–बैठे जो चाहे अपनी बात रखना वह अयुक्त ही है। छल जाति वादी छलका सामान्य लक्षण इस प्रकारसे करते हैं कि अर्थमें तत्वमें विकल्प उठा–उठाकर दूसरेके वचनका विघात कर देना इसका नाम छल है। यह उस छलका लक्षण कहा जा रहा है जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वादविवादमें छलका प्रयोग करके दुनियाकी निगाहमें अपनी जीत जाहिर करने और दूसरेकी हार जाहिर करनेकी वाञ्छा लगी है। वे लोग छलका यह लक्षण मानते हैं कि जिस किसी भी प्रकार हो, दूसरेके वचनका घात कर देनेमें वचनका नाश कर देना इसका नाम है छल। वह छल तीन तरहका होता है—वचन छल, सामान्य छल और उपचार छल। ऐसा छल जातिवादी यौगोंके सिद्धान्तमें कहा गया है।

उदाहरणसहित छलका सामान्य लक्षण—यौगसिद्धान्ती वचन छलका लक्षण यह मानते हैं कि सामान्यरूपसे कोई बात कही जा रही हो और उससे वक्ता का अभिप्राय कुछ और हो। लेकिन उससे भिन्न दूसरे अर्थकी कल्पना करके उसको सभामें उपस्थित करना। लोगोंको ऐसे कपट भरे वचनोंसे वक्ताके अभिप्रायको दूषित बताना ये सब बातें छल हैं। इनका यह उदाहरण है कि किसीने कहा कि यह वैधवेय सम्पन्न हो गया भी देखो यह नवकम्बल वाला आया हुआ है. नवकम्बल बनकर आया हुआ है। कोई लड़का विधवाका हो और गरीब हो और कुछ दि.में जिसको कि पहिले ओढ़नेके लिए फटे कपड़े भी न मिलते थे वह बहुत बढ़िया कीमती नया कम्बल ओढ़ करके आया। अब यहाँ वक्ताका अभिप्राय तो यह है कि यह एक गरीब विधवाका लड़का है जो बड़ी गरीबीमें पला है और आज देखो यह नवीन कम्बल ओढ़कर आया है। माने वह अब सम्पन्न हो गया है। किसीने कहा तो यों और उसके कहनेपर प्रतिवादीने दूषण और मजाक उपस्थित कर दिया। लोगोंसे कहता है देखो भाई यह कितना सफेद झूठ कह रहा है। यह कह रहा है कि यह नवकम्बल वाला आया है। अर्थात् ९ कम्बल ओढ़कर आया है। देखो! कहाँ हैं ९ कम्बल इसके ऊपर, तो यह नवकम्बल शब्दसे नव शब्द एक ऐसा सामान्य है कि नवका अर्थ नया भी है और नवका अर्थ ९ भी है। वो नवका अर्थ नवीन कह रहा था उसका आशय था कि यह नवीन कम्बल ओढ़ करके आया है, लेकिन यह प्रतिवादी उसके शब्दका अर्थ दूसरा लगाकर जो कि सही नही है और न घटनामें वह बात है ऐसा अर्थ लगाकर वह बोलता है कि इसके पास कहाँ ९ कम्बल हैं। वादीका अभिप्राय जान रहा है प्रतिवादी और दार्शनिक लोग भी सही सही अभिप्राय जान रहे हैं। यह वक्ता कह रहा है कि इसका कम्बल नया है, फटा हुआ नही है, वक्ताका तो अभिप्राय यह है मगर इस अभिप्रायसे भिन्न दूसरा अर्थ जो सही नही है ऐसे अर्थकी कल्पना कर देना कि इसका अर्थ यह है कि इसके पास ९ कम्बल हैं, ८ नही हैं, कम नही हैं। तो इस तरह यह प्रतिवादी अन्यायसे बोल रहा है। युक्त वचन तो नही हैं। वाद विवादमें अभिप्राय निरखा जाता है। शब्दोंपर दृष्टि नही दी जाती। यदि वह न्यायका वाद विवाद है और कल्याणकी इच्छासे वाद विवाद है तो उसमें बोलने वालेका अभिप्राय देखा जाता है। यदि उसको अभिप्राय वस्तु स्वरूपसे विपरीत है तो प्रतिवादी बड़ी युक्तिसे दूषण बताकर उसको समझाना चाहता है कि यह है वस्तुका स्वरूप। इसके अनुसार हम अपना आशय बना लें। तो न्यायकी बात यह है कि सबका हित हो, वादीका भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संदेह निकले और सत्य अर्थकी यह समझ बनाये। तो यहाँ सब समझ लिया था कि इसका अर्थ नवीन कम्बल वाला कहा गया है, लेकिन वह एक प्रतिवादी जो छल ज ति के उगयसे ही जीत मानकर अपनेको धर्म समझ रहा है वह यहाँ दोष उपस्थित कर रहा कि देखो यह कह रहा है कि इसके ९ कम्बल हैं ८ नही हैं, लोग सब समझ गए कि यह प्रतिवादी अन्यायसे बोल रहा है। तो भले ही वह अपने मनमें समझे कि देखो मेरी कैसी जीत हुई है, लेकिन सब लोग यह समझ रहे हैं कि हार तो इसीकी हुई है जो किसी भी वचनका छल प्रयोग करके एक सही बातको थापना चाहता है, वचनका घात करना चाहता है।

समर्थ वचनसे ही तत्त्वनिर्णयका निर्णय —अब यहाँ शंकाकार यह कह रहा है कि नही, जो विद्वान लोग हैं, जो गुरु शिष्य हैं, जिनमें समझने समझानेकी उत्सुकता है वे लोग तो तत्त्वकी परीक्षामें छलका प्रयोग नही करते। छलके द्वारा तत्त्वका न रखना, उनकी बात तो यह ठीक है लेकिन जहाँ दुनियामें जय पराजयकी ही बात साबित करना है वहाँ तत्त्व परिक्षाये काम न चलेगा। सभ्यतासे, केवल एक समर्थ वचन प्रयोगसे काम न चलेगा, छल जातिके माध्यमसे ही जीत हारका निर्णय किया जायगा इस प्रकार यौग सिद्धान्तवादी कहता है ? उसके उत्तरमें कहा जा रहा है कि वे पुरुष तत्त्वके जानकार नही है, क्योंकि यदि छल जाति कपट भरे वचनोंको बोल–बोलकर ही छलवादी दूसरेका निग्रह करना चाहता है तब जो बड़े समर्थ वचन बोलकर सम्यक अर्थ भी बताने वाला है ऐसे पुरुषका भी निग्रह कर दिया जाना चहिए, पर यह बात नही है। जिस पक्षमें वादी प्रतिवादीकी विसम्वादसे प्रवृत्ति होती है उसकी ही सिद्धि होनेसे एककी जीत है और दूसरेकी हार किन्तु अनेक अर्थ बोलकर अनिष्ट अर्थ लगा बैठनेसे जीत और हारका निर्णय नही होता। जीत हारका निर्णय तो तत्वकी सिद्धि कर सकने वाले वचनोंके द्वारा ही हो सकता है।

वचन छलसे जयके निर्णयकी आशंका व उसका समाधान —शंकाकार कहता है कि वचन छलसे जीत होती है इसका कोई प्रमाणयुक्त वचन दे अथवा न दे इसमें जीत हारका निर्णय नही है, किन्तु वचननोंसे छल करके अर्थका दूसरा अर्थ लगाकर पेश करनेसे जीत हुआ करती है। जैसे किसीने कहा कि यह पुरुष जो आया है वह नवकम्बल वाला है, तो कोई दूसरा याने प्रतिवादी बोल उठा कि यह कहाँ ९ कम्बल वाला है ? इसके पास कहाँ हैं ९ कम्बल ? तो वादी कहता है कि इस तरह मेरे वचनका दूषण देते हो, प्रतिवादी उनके वचनका विघात कर रहा था है और इस तरहसे उसकी हार और आपकी जीतकी घोषणा कर हरा था। अब वादी उन दोनों अर्थोंके समर्थनसे अथवा उन दोनों अर्थोंमेंसे एक किसी अर्थके समर्थनसे हेतुकी सिद्धि प्रदर्शित करता है। एक ही नया कम्बल, इसकी प्रतीति हुई है आपको, और वे ८ कम्बल घररर रखे हैं। दोनों प्रकारसे नवकम्बलपनेकी सिद्धि होनेमें असिद्धता नही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कही जा सकती। जैसे सर्व प्रथम वादीने तो इस अभिप्रायसे कहा कि नया कम्बल है तो नवकम्बल वाला कहा तो प्रतिवादीने उसे सर्मिन्दा करनेके लिए लोगोंसे कहा कि देखो भाई ! कहाँ हैं इसके पास ६ कम्बल ? [८ भी नही हैं। तब वादी यह कहता है कि एक कम्बल तो यहाँ ओढ़कर आया है और ८ कम्बल इसके घरपर रखे हैं, इस प्रकार वादी दोनों प्रकारसे हेतुको सिद्ध करना चाहता है तो नव (नूतन) कम्बलके सम्बन्धको हेतु रूपसे ग्रहण करनेसे यह हेतु सिद्ध होता है, इस प्रकार अपने पक्षकी सिद्धि होने पर ही वादीका जय और दूसरेका पराजय होता है अन्यथा नही होता। इत्यादि छलसे कुछ निर्णय नही है अर्थात् वचन छल करके अपनी जीत साबित कर देना यह युक्त नही है। तो युक्ति पूर्वक वचन हों उससे ही जीत और हारकी दृष्टि बन सकती है। तो इस तरह छलके तो लक्षणोंमेंसे वचन छल नामके प्रथम लक्षणकी बात कही है।

सामान्य छलमें भी जय पराजय व्यवस्थानिबन्धनताका अभाव– अब सामान्य छलके सम्बंधमें कहते हैं कि सामान्य छल भी जीत और पराजयका कारण नही है। सामान्य छलका लक्षण किया गया है कि जो सम्भव अर्थ है। जो अर्थ लगाया जा सकता है उसमें और सामान्यके योगसे उद्भूत अर्थकी कल्पनायें करना यह सामान्य छल कहलाता है। जैसे किसीने कहा कि विद्या और आचरणकी सम्पत्ति तो ब्राह्मण में ही सम्भव हो सकती है ऐसा कहनेपर अब प्रतिवादी इस वाक्यका ही विघात करता है। उस अर्थका विकल्प उठाकर उस वाक्यके दूसरे मायने लगाकर अथवा उस में ही भेद उठा करके असद्भूत अर्थकी कल्पना करताहै और कहता है कि यदि ब्राह्मण में ही विद्या और आचरणकी सम्पत्ति सम्भव होती है तो जो ब्राह्मण बहिष्कृत है व्रात्य है उस ब्राह्मणमें भी विद्या और आचरणकी सम्पत्ति मान लेना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मणत्व वैसा ही व्रात्यमें भी है सो यहाँ भी सम्भव होना चाहिये। यह ब्राह्मणत्व अतिसामान्य है। और साध्य है विद्या आचरणकी सम्पत्ति वाला सो किसी ब्राह्मणमें तो विवक्षित अर्थ लगता है और जो व्रात्य ब्राह्मण है उसमें यह अर्थ नही लगता। लेकिन ब्राह्मणपना तो विद्या और आचरणके न होनेपर भी उसमें भी सम्भव है इस लिए यह अति सामान्य हो गया, इस कारण उसके योगसे वक्ताका जो अभिप्रेत अर्थ है, जो अर्थ उसने अपने आशयमें विचारा था वह तो सद्भूत था। उसका तो मतलब यह था कि जो ब्राह्मण उच्च कुलीन हैं उनमें विद्या और आचरण सम्पत्ति सम्भव होती है मगर इस बातको छोड़कर वह अन्य असद्भूत अर्थकी कल्पना करता है तो यह सामान्य छल हुआ। किसी वाक्यमेंसे किसी शब्दके दो अर्थ लगाकर और जो इष्ट अर्थ नही है उस असिद्ध अनिष्ट अर्थको लगाकर मुह बन्द करना यह तो हुआ वचन छल और सारे वाक्यके ही अर्थको दूषित करना यह हुआ सामान्य छल। तो यह सामान्य छल अयुक्त है, क्योंकि हेतुमें दोष है। जो अनैकान्तिक आदिक कहे गए हैं वे दोष इस अनुमानमें दूसरेके द्वारा लगाये गए हैं। सो यहाँ हेत्वाभाससे दूषित किया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जाय तो यह ठीक है किन्तु सामान्य छलका प्रयोग अशोभनीय है।

सामान्य छलकी सोदारण अयुक्तताका कथन—जैसे अनुमान बनाया कि विद्या आचरणकी सम्पत्ति ब्राह्मणमें ही होती है। ब्राह्मण होनेसे तो यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है। ब्राह्मण तो यह भी है और ब्राह्मण व्रात्य भी है। तो ब्राह्मणत्व दोनोंके समान होनेपर भी विद्या और अचारणकी सम्पत्ति कुलीनमें पायी गई। तो यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है। अनैकान्तिकपना प्रकट करना सामान्य छल नही कहलाता। अनैकान्ति दोषका उद्भावन करना प्राज्ञसम्मत है, समान छल और बात है। यदि अनैकान्तिक दोषके उद्भावनको सामान्य छल कह दिया जाय तो अनेक अनुमानोंमें सामान्य छलका प्रसंग हो जायगा जैसे कहा कि शब्द अनित्य है प्रमेय होने से घटकी तरह। तो इस अनुमानमें प्रमेयत्व हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित है। प्रमेय शब्द भी है और प्रमेय आकाश भी है, लेकिन जो जो प्रमेय होता है वह वह अनित्य होता है यह व्याप्ति तो नही बनती। शब्द प्रमेय है और उसमें अनित्यत्वका प्रयोग ठीक है। मगर जितने भी पदार्थ प्रमेय हों, वे सब अनित्य हों, वह बात नही बन सकती, आदिक वाक्यमें भी सामान्य छलका प्रसंग आ जायगा। यहाँ पर भी प्रमेयत्व किसी घट आदिकमें तो अनित्यपनेको सिद्ध करता है, पर आकाश आदिक चूंकि प्रमेय हैं और अनित्य नही मिल रहा है तो आकाशादिकमें अनित्व न होने पर भी प्रमेयत्वपना पाया जाता है इसी तरहसे आचरण विद्या सम्पत्ति न होनेपर भी ब्राह्मणपना पाया जा रहा है ब्राह्मणत्व जातिका यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो गया। तो अति सामान्य योगमें भी अनैकांतिकपना होनेसे यह अनुमान दूषित हुआ है। तो सामान्य छल करके जीतकी व्यवस्था नही बनी किन्तु हेतुमें दोष देकर ही यह व्यवस्था बनी, तो जहाँ हेतु निर्दोष हो उससे तो अनुमानकी सिद्धि होती है, और जो हेतु निर्दोष नही उनसे शुद्ध अनुमानकी सिद्धि नहीं होती। तब सामान्य छल जीत और हारके लिए प्रयुक्त नही हो सकता।

उपचार छलमें भी जयपराजयव्यवस्थानिबन्धताका अभाव—उपचार छल भी जीत हारकी व्यवस्थाका कारणभूत नही बनता। उपचार छलका लक्षण है कि धर्म विकल्पका निर्देश करनेपर अर्थके सद्भावका निषेध करना सो उपचार छल है, ऐसा यौगोंके न्याय सूत्रमें कहा गया है। जैसे—धर्मके क्रोशनादि विकल्प उपचार करके उसका निर्देष करना किसीने कहा कि यह मंच चिल्लाता है या गाता है। जैसे कही नाटक हो रहा है तो उस नाटकमें कोई पात्र ही तो गाता है, पात्र ही रोता है, सब कुछ करता है। यदि नाटक खेलते न बना तो लोग कहते हैं कि क्या रखा है वहाँ? वहाँ का तो मंच कोसता है। अथवा नाटक खेलते अच्छा बन गया तो कहते हैं लोग कि वाह! कितना अच्छा मंच था। मंचने कितना सुन्दर नाटक गाया? ऐसा कहनेपर उसमें जो मंच शब्दका प्रयोग किया गया है वह प्रयोग करने वाले वादीने

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो उपचारसे किया है। क्या बोलने वाला यह खुद नहीं जानता है कि यह मंच, ये तखत आदिक नही कोसते हैं, किन्तु उन मंचोंपर आकर अच्छा अभ्यास करने वाले बालक यही गाते हैं यही कोसते हैं, लेकिन उपचारसे ऐसा कहा जाता है। तो वहां कोई यह कहे कि देखिये इनकी बुद्धि ये कहते हैं कि मंच कोसता है। मंच गाता है, अरे ये तखत, मंच आदिक गा सकते हैं क्या? मंचपर उपस्थित हुए पुरुष ही बोलते हैं और गाते हैं। इस तरह कहकर उसका मुख बंद करना और उसका पराजय बताना, अपनी जीतकी घोषणा करना यह सब क्या है? यह सब है एक उपचार छल। तो शंकाकारका यह अभिप्राय है कि जीत छलसे होती है। युक्तिसंगत बात, प्रमाणसिद्ध बात करनेका कोई महत्त्व नही है जब कि विजगीषाका प्रसंग हो जहाँ जीतहारका प्रसंग हो वहां तो छलसे काम लिया जायगा और छल ही धर्म है लेकिन जैन सिद्धान्त कहता है कि समर्थ वचन बोलनेसे जिसके वचनमें दोष आये वह दूषित हो गया, उसकी हार हो गयी और समर्थ वचन बोलनेसे जिसका साधन पुष्ट हो गया उसकी जीत हो गयी। तो यों सामान्य छलसे जैसे जीतहारका कारण न बने वचन छल इसी प्रकारसे यह उपचार छल भी जीतहारका कारण नही बनता। यद्यपि छल प्रयोग दूसरेकी हारके लिये बना शंकाकारके मतसे, क्योंकि जो वक्ताका अभिप्राय है उसका निषेध कर दिया? लेकिन यह विद्वानोंकी दृष्टिमें जीतका कारण नही बन सकता। विद्वानोंका तो एक ही निर्णय है कि वक्ताके अभिप्रायको पहिले देखो उसका उल्लंघन न करे फिर दोष देवो। फिर जो उसमें दोष आये तब तो वक्ताकी हार है लेकिन अभिप्राय वक्ताका कुछ और है और उसको बदलकर वह अभिप्राय दूसरा जमा दे तो यों दोष देनेकी बातसे कोई उसकी जीत न मान लेगा?

गौण अर्थको प्रधान करके बनाये गए उपचार छलसे जातिवादीका निग्रह—जैसे जब कोई सिरपर टोकरी रखे हुए केला लादे हुए बेचनेके लिए जा रहा है और वह कहता है केला लो केला! तो जिसे केला चाहिये वह यों बोलता है कि ऐ केला यहां आवो। और, उस कहने वालेको कोई टोंकदे कि अरे भाई! तुम केलाको कैसे बुला रहे? केला यहाँ आ ही कैसे सकता है? तो उसकी यह तो छलभरी बात है। कौन नहीं जानता कि 'ऐ केला" कहनेसे उसका अर्थ क्या है? ऐ केला लावो—यह कहना उपचार कथन है? उस उपचारकी बातका सन्देह करके कि केला यहाँ कहाँ आयगा? केला वाला आयगा। इस प्रकार अभिप्राय लेकर उसके वचनको अभिप्रायमें घटित करता है तो यह उसका छल है। छलसे जीत न बनेगी। जीत बनती है युक्तिसंगत वचन बोलनेसे, हेतु कहनेसे। शब्दका प्रयोग लोक में दो तरहसे किया जाता है प्रधानरूपसे और गौणरूपसे। तो जिसने केला कहकर बुलाया उसे प्रधानरूपसे नहीं कहा, गौणरूपसे कहा। उस केला वालेको केलाका उपचार करके कहा लेकिन कोई पुरुष गौण अर्थको तो छुपा दे और प्रधान अर्थ लगा बैठे तो यह उसका छल है। कोई वचन प्रयोग प्रधानरूपसे किया जाता है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई प्रतिवादी प्रधान अर्थको तो छुपा दे और गौण अर्थको आगे रख दे तो यह भी उसके लिए छल है, गौणअर्थाभिमुखको उस समय उसमें कोई दूषण दे तो यह कहलाता है छल। इस प्रकार कोई पुरुष प्रधानभूत वचन कहता है तो उस समय उसके प्रधान भावको तो हटा दे और गौण भावका वर्णन करे तो यह उसका छल कहलाता है। जिस समय वक्ताने गौण अर्थको अभिप्रायमें लिया, जैसे कि कहा कि मंच गाता। तो यह गौणरूपसे कह रहा है, उपचारसे कह रहा है। उस अर्थको तो कर दिया गुप्त और कह बैठे वाह! मच कहाँ गा रहा है, तो यह है उसका एक छल। तो यों गौण अर्थको प्रधानभूत अर्थ मानकर वचनका आशयका निषेध करता है तो उस समय प्रतिवादीने अपनी बुद्धि प्रतिषिद्ध की अपनेको निर्बुद्धि प्रसिद्ध किया दूसरे का अभिप्राय निषिद्ध नहीं हुआ। ऐ केला आवो, ऐसा कहनेपर जानते हैं कि इसका अभिप्राय क्या है? तो लोगोंको उसका दोष दे करके उसकी सनिन्दा करे या उसकी हार दिखाये तो यह बात न बन सकेगी, जीत उसकी होगी जिसके वचन प्रमाणसिद्ध है। और जिसके प्रमाणमें दोष आता है हार उसकी है। तो इससे जीत और हारके निर्णयके लिये शंकाकार जो छल जाति निग्रह आदिकका प्रयो करके और उसे तत्त्व रक्षा दे करके जीत हारकी व्यवस्था बनाता है, यह उसकी कुबुद्धि है।

छलमात्रसे जय मानने वाले दार्शनिकके अनिष्ट प्रसगका कथन— दार्शनिक लोग आत्महित के लिए तत्वकी संख्या बनाते हैं। जैसे जैन सिद्धान्तमें तत्व ७ माने हैं जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। किन्तु योगके यहाँ १६ तत्व माने जा रहे हैं जिसमें छल जाति निग्रह तत्व भी कहा गया है। तत्व कहीं कुतत्वको भी कहते हैं क्या? आत्महितके लिए जो उपयुक्त हों उनको ही तत्व कहा जाता है। तो इस प्रकार जो शंकाकार इन छलोंके द्वारा जय-विजयकी व्यवस्था बनाना चाहता है उसकी यह केवल एक अनुदारतापूर्ण कल्पना है। यह दूषण प्रेक्षावानोंमें नही लग सकता है। और, जब बुद्धिमानोंमें छलोंका दोष न आया तो वे यथार्थ समझते हैं। जिसके युक्तिसंगत वचन हैं वह तो जीता है और जिसके युक्तिविरुद्ध वचन हैं उसकी पराजय हुई है, क्योंकि यदि छल जाति निग्रह स्थानोंका ही प्रयोग कर-करके कोई जीत-हारकी व्यवस्था बनाये अथवा गौण अर्थ जिस वक्ताके अभिप्रायमें है उसका निषेध करके मुख्य अर्थकी बात रखे और दूषण दे या मुख्य अर्थका निषेध करके गौण अर्थकी बात रखकर दूषण दे, यदि इतने मात्रसे दूसरेका निग्रह होता है, पराजय होती है, तो भला यह योग जब सर्वशून्य वादियोंके प्रति मुख्य रूपसे प्रमाण आदिकके प्रतिषेधको करके निग्रह करता है, उनकी हार बनाता है तो शून्यवादकी यह बात भी तो सम्व्यवहारसे, प्रमाण आदिकसे तो उसे मान लिया ना, फिर इतने मात्रसे प्रतिवादीकी पराजय मान ली गई है तो अपने पक्षकी सिद्धिसे ही दूसरेकी पराजय होती है, यह बात फिर लुप्त हो जायगी। वास्तविकता यह है कि अपने पक्षकी सिद्धिसे ही स्वसिद्धान्तकी जीत है और परकी पराजय है। यहाँ तक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

छल प्रयोगके सम्बन्धमें वर्णन किया और यहाँ सिद्ध किया गया कि अपने पक्षकी सिद्धि से ही जीतकी व्यवस्था है और दूसरेके पक्षमें दोष देनेसे पराजयकी व्यवस्था है। छल मात्रसे जय और पराजयकी व्यवस्था नहीं बनतीं।

जातिमात्रसे जय-पराजय व्यवस्थाके अभावका प्रतिपादन—जिस प्रकार छल मात्रसे जय-पराजयकी व्यवस्था नहीं है उसी प्रकार जाति मात्रसे भी जय पराजयकी व्यवस्था नहीं होती। जातिका सामान्य लक्षण कहा गया है कि साधर्म्य और वैधर्म्यसे दूषण देनेको जाति कहते हैं। याने सदृशता और विसदृशता प्रदर्शित करके वादीके कहे हुए वचनमें दूषण देनेको जाति कहते हैं। यह जातिका सामान्य लक्षण है। जातिके भेद अनेक होते हैं, उन सब भेदोंमें यह लक्षण पहुंच गया इसी-लिए इसे सामान्य लक्षण कहा है। जाति अनेक होती हैं और जातिकी अनेकता भी सदृशता और विसदृशताके दिखानेके दूषणके भेदसे होती है। इसीको यौग सिद्धान्तमें न्याय भास्करने कहा कि साधर्म्यसे दूषणमें अनेक विकल्प बनते हैं। उन विकल्पोंके भेदसे जातिमें अनेकता बनती है और वे सब जातियाँ विधिके प्रयोगपर जिसमें साध्य विधिरूप हो उस हेतुके प्रयुक्त करते समय २४ प्रतिषेध हेतु वाली जातियाँ होती हैं वे २४ प्रकारकी हैं साधर्म्यसमा, वैधर्म्यसमा, उत्कर्षसमा, अपकर्षसमा वर्ण्यसमा, अवर्ण्यसमा, विकल्पसमा, साध्यसमा. प्राप्तिसमा, अप्राप्तिसमा, प्रसंगसमा, प्रतिदृष्टान्त-समा, अनुपपत्तिसमा, संशयसमा, प्रकरणसमा, अहेतुसमा, अर्थापत्तिसमा अविशेष-समा उपपत्तिसमा उपलब्धिसमा, अनुपलब्धिसमा, नित्यसमा, अनित्यसमा कार्यसमा।

साधर्म्यसमा जातिका परिचय —उक्त २४ प्रकारके प्रतिषेध हेतुक जातियों मेंजो प्रथम साधर्म्यसमा जाति है उसके सम्बन्धमें यौगसिद्धान्तमें न्याय रकारने इस प्रकार कहा है कि सदृशतासे साध्यका उपसंहार किया जानेपर साध्यधर्मसे विपरीत की उपपत्तिसे साधर्म्यके माध्यमसे प्रतिवादके द्वारा दूषण देना यह साधर्म्यसम प्रति-षेध कहलाता है। इसका उदाहरण है कि जैसे किसीने प्रयोग किया कि आत्मा क्रिया-वान है, क्योंकि क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय होनेसे! यहाँ क्रियाका हेतुभूत गुण है प्रयत्न और प्रयत्नका आश्रयभूत है आत्मा। इस कारणसे आत्मा क्रियावान है। जो जो क्रियाके हेतु गुणोंका आश्रय रहता है वह वह सब क्रियावान हैं। जैसे लोढ़ा पत्थर आदिक। छोटे छोटे कंकड़ ये क्रियाके हेतुभूत गुणके आश्रय वाले हैं। तो ये क्रियावान हुए ना! इसी प्रकार आत्मा भी क्रियाके हेतुभूत प्रयत्न नामक गुणका आश्रय है इस कारण आत्मा भी क्रियावान है। इस तरह साध्यका अन्वय दिखाकर इस साधर्म्यके उदाहरण द्वारा साध्यका उपसंहार किया गया तो उस समय प्रतिवादी साध्यधर्मके विपरीत बातकी उपपत्ति दिखाकर साध्यके उदाहरणसे ही वादीके वचनको दूषित करता है वह किस प्रकार ? प्रतिवादी उस समय प्रयोग करता है कि आत्मा निष्क्रिय है क्योंकि विभुद्रव्य होनेसे। जो जो विभु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

द्रव्य होता है अर्थात् सर्वव्यापक द्रव्य होता है वह वह निष्क्रिय होता है। जैसे आकाश आकाश सर्वव्यापक है अतएव वह भी निष्क्रिय है। इस प्रकार साधर्म्यके रूपसे अन्य अनुमान बनाकर साधर्म्यका उदाहरण ही देकर वादीके वचनका खण्डन किया गया है, तो यहाँ साधर्म्यसम जातिके प्रयोगसे वादीको हरानेका प्रयत्न किया गया है। तो योग सिद्धान्तका कहना है कि वादविवादमें साधर्म्यसमा जातिका प्रयोग करके वादीको हराया जा सकता है और इस तरह अपनी जीत और दूसरेकी हार करनेका कारण यह जाति है। कोई कहे कि क्रियावानकी सदृशता होनेसे क्रियावान तो होता रहे और निष्क्रियावानकी सदृशता होनेसे निष्क्रिय न हो तो ऐसा कहनेपर कहते हैं कि उसमें और इस उदाहरणमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। क्रियावानकी सदृशतासे क्रियावान तो हो जाय और निष्क्रियताकी सदृशतासे निष्क्रिय न हो ऐसी कोई बात नहीं है। जैसे कि वादीने आत्माको क्रियावान सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया था और उसका सपक्ष साधर्म्यका उदाहरण दिया था उसके विरोधमें प्रतिवादीने जो अनुमान बनाया था वह निष्क्रिय सिद्ध करनेके लिए इसी प्रकारका विधिरूप साध्यका अनुमान बनाया है। तो देखिये जैसे वादीने साधर्म्यका उदाहरण देकर आत्माको क्रियावान सिद्ध करनेके लिए अनुमान किया है तो उसका ही प्रतिषेध करनेके लिए अनुमान किया है तो उसका ही प्रतिषेध करनेके लिए प्रतिवादीने साधर्म्यका उदाहरण देने वाले हेतुसे अनुमानसे आत्माको निष्क्रिय सिद्ध किया है। अब यहां वादी यह तो कह नहीं सकेगा कि क्रियावानकी सदृशतासे आत्मा क्रियावान तो बन जायगा, पर निष्क्रियताकी सदृशतासे आत्मा निष्क्रिय न बन सकेगा। यह बात क्यों नहीं कही जा सकती है? क्योंकि दोनों अनुमानोंमें साधर्म्यकी समानता है। तो यों वादीके अनुमानमें साधर्म्य सम दूषणाभास लगाया गया। आत्माको क्रियावान साध्य करनेपर क्रियाके हेतुभूत गुणोंकी आश्रयता रूप हेतुकी अपने साध्यके साथ व्याप्ति विभु होनेके कारण निष्क्रियताकी सिद्धि होनेमें निराकृत नहीं हो पाती है और न यह भी बात हो सकती है कि कोई कहे कि व्याप्तिका विच्छेद मत हो और व्याप्तिमें दूषण लग जाय तो यह भी बात सम्भव नहीं क्योंकि साध्य और साधनकी व्याप्तिका निराकरण करनेमें समर्थका ही दोषरूपसे निराकरण किया गया है यहाँपर आत्माको क्रियावान सिद्ध करनेके लिये जो हेतु दिया था। अनुमान साधा गया था तो उसको प्रतिवादीने दोंदापट्टी करके भले ही साधर्म्यसम दूषण बना दिया हो तो इतने मात्रसे वादीकी हार हो जाय और इस जातिके प्रयोगसे प्रतिवादीकी जीत हो जाय ऐसी बात नहीं है। यदि व्याप्तिको निराकृत करनेके लिए समर्थ कोई वचन हों तो प्रतिवादीको जो इष्ट है उस जीतहार की व्यवस्था बन सकती है यों जातिका प्रयोग करके दूसरेका पराजय करा देना यह बात बुद्धिमानोंकी गोष्ठीमें सम्भव नहीं है। तो साधर्म्यसमा जातिके द्वारा भी जय और पराजयकी व्यवस्था नहीं बन सकती।

साधर्म्यसमा जातिका और भी विशिष्ट परिचय—शंकाकार साधर्म्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समा जातिसे जीत–हारकी व्यवस्था बना रहा है। शंकाकारके सिद्धान्तमें वार्तिककार तो यह कहता है कि सदृशतासे साध्यका उपसंहार करनेपर सदृशतासे विपरीतकी सदृशतासे उदाहरण देकर दूषण देना और वैधर्म्यसे साध्यका उपसंहार करनेपर उस वैधर्म्यकी सदृशतासे दूषण देना इसका नाम साधर्म्यसमा है अर्थात् जब कोई एक अन्वय व्याप्ति वाला, विधिसाध्य वाला साधर्म्य सदृशता दिखाकर साध्यका उपसंहार करे तो उसके प्रति यदि कोई उस साधर्म्यसे विपरीत अन्य साधर्म्य दिखाकर दूषण दे तो साधर्म्यसमा है अथवा किसीने विसदृशतासे साधर्म्यका उपसंहार किया तो विशदृशताके ही ढङ्गसे उदाहरण देकर साधर्म्यरूपसे दूषण देना इसको साधर्म्यसमा कहते हैं। जैसे वादीने कहा कि शब्द अनित्य है, उत्पन्नत्व धर्मवाला होनेसे घट पट आदिककी तरह। ऐसा वादीके द्वारा कहे जानेपर दूसरा जातिवादी प्रतिकूल होकर कथनको परिवर्तित कर देता है—कहता है, दूषित करता है कि यदि अनित्य घटकी सदृशतासे यह शब्द अनित्य है तो नित्य भी आकाशके साथ इसकी अमूर्तत्व हेतुसे सदृशता बनती है, तो शब्द नित्य द्रव्य भी सिद्ध होता है। यहाँ वादीने कहा था कि शब्द अनित्य है उत्पत्ति धर्मवाला होनेसे। जो अनित्य नही होता है वह उत्पत्ति धर्मवाला नही होता है, जैसे कि आकाश ! ऐसा वादीने कहा तो प्रतिवादी, जातिवादी उसे दूषित करता है कि यदि नित्य आकाशकी विसदृशतासे शब्द अनित्य है तो इसका साधर्म्य भी आकाशके साथ अमूर्तपनेका है। इस कारण यह नित्य प्राप्त हो जायगा। यदि कहो कि आकाश के साथ शब्दका साधर्म्य पाया जाता है तो भी नित्य नही होता है। तो फिर यह न कहना चाहिये कि अनित्य घटकी सदृशतासे और नित्य आकाशकी विसदृशतासे शब्द अनित्य होता है। यहाँ वादीने किसीसे यह कहा कि शब्द अनित्य होता है उत्पत्ति धर्म, वाला होनेसे जैसे कि घट और साथ ही वह यह भी कह रहा है कि आकाश जैसे कि अनित्य भी नही है, उत्पत्ति धर्म वाला नही है, तो जो अनित्य नही होता वह उत्पत्ति धर्म वाला नही होता, जैसे कि आकाश। तो यों कहनेपर, आकाशकी विसदृशता बताने पर फिर तो जैसे आकाश अमूर्त है ना तो शब्द भी अमूर्त माना जाता सो आकाशकी तरह शब्द नित्य बन पड़ेगा, लेकिन अब जब आकाशसे विसदृश है ऐसी बात कहकर शब्दको तो अनित्य कहा और उसे ही अमूर्त बताये शंकाकार अथवा आकाशका गुण शब्द मानने वाले शब्दको अमूर्त बताते ही हैं तब फिर उन्हींके ही कथनसे साधर्म्यसमा जातिके द्वारा दूषण आ गया। अतः ऐसी साधर्म्यसमा जाति कहकर जातिवादीकी जीत बनती है और वादीकी हार बनती है। ऐसा वह कहता है लेकिन साधर्म्यसमा जातिसे कहनेपर फिर तो आकाशके विरुद्ध जैसे शब्द अनित्य है तो आकाशके विरुद्ध शब्दको अमूर्त न रहना चाहिये, मूर्त हो जाना चाहिए। किन्तु आकाश गुणवादी ऐसा मानता नहीं। अतः साधर्म्यसमा जाति जय और पराजयकी व्यवस्थाका कारण नही है।

वैधर्म्यसमा जातिका परिचय—वैधर्म्यसमा जातिकी बात सुनो वैधर्म्यसमा जातिमें क्या होता है कि वैधर्म्यसे, विसदृशतासे साध्यका उपसंहार करनेपर साध्य धर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

की विपरीततासे वैधर्म्यके द्वारा अथवा साधर्म्यके द्वारा दूषण दिया जाता है। जैसे कि आत्मा निष्क्रिय होता है वह व्यापक नही होता जैसे लोष्ठ आदिक। और, आत्मा है विभु, इस कारण निष्क्रिय है ऐसा वादीने कहा तो दूसरा प्रतिवादी अथवा जातिवादी बोलता है कि आत्माके निष्क्रिय होनेपर फिर क्रिया हेतुरूप जो गुण प्रयत्न है, उसका आश्रयपना न हो सकेगा आकाशकी तरह, और प्रयत्न गुणका आश्रय है आत्मा। जो लोग आत्माको विभु निष्क्रिय मानते ऐसे वैशेषिक सिद्धान्तवादी भी आत्माको प्रयत्न गुणका आधार मानते हैं। तो यदि आत्मा निष्क्रिय है व्यापक होनेसे, तो फिर आत्मा में प्रयत्न नही आ सकता है और प्रयत्न आत्मामें माना गया है इस कारण यह निष्क्रिय नही है यह तो हुआ वैधर्म्यसे दूषण देना अब साधर्मसे दूषण देना सुनिये ! वह यों है कि आत्मा क्रियावान ही होता है, क्योंकि क्रियाके हेतुभूत प्रयत्न गुणका आश्रय होनेसे जो जो क्रियावान होता है वह क्रियाके हेतुभूत प्रयत्न गुणका आश्रय होता है। जैसे लोष्ठ आदिक। और, आत्मा भी क्रियावान है। क्रिया हेतुका गुणका आश्रयभूत है इस कारण क्रियावान ही है यों वैधर्म्यसम जातिके द्वारा वादीकी हार की गई है, ऐसा यह मानता है जातिवादी, लेकिन यह बात युक्त नही घटित होती। कारण यह है कि यदि कोई अनुमान गलत होता है तो हेत्वाभास आदिक कोई बात घटित होती है तब अनुमान गलत होता है। उसके लिए वैधर्म्यसमा जाति नामकी कोई जाति कल्पित की जाय और उससे दूषितकी जाय सो बात नहीं बनती। वादीने जो आत्माको निष्क्रिय सिद्ध करनेके लिए विभु हेतु बताया था सो आत्मामें विभुपना है ही नहीं। तब यह असिद्ध हेत्वाभास हो गया और क्रिया हेतु गुणाश्रयताके कारण क्रियाश्रय होनेसे अनुमान बाधित हो गया। उसीके बलपर यह साधर्म्यसमा वैधर्मसमा जाति लगाई जा रही है तो मूल दूषण तो हेत्वाभासका है। अतः हेत्वाभाससे ही अनुमान दूषित हो गया। वैधर्म्यसमा जातिकी कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उत्कर्षसमा जातिका परिचय—उत्कर्षसमाका लक्षण सामान्यरूपसे न्यायसूत्रमें यों कहा है कि साध्य और दृष्टान्तमें धर्मके भेदसे धर्मके समारोपसे और दोनों ही साध्य होनेसे उत्कर्षसमा अपकर्षसमा वर्ण्यसमा अवर्ण्य विकल्पसमा व साध्यसमा जाति हुआ करती हैं। याने इन जातियोंके बननेमें मूल कारण यह है कि साध्य और दृष्टान्तमें धर्मका समारोप किया गया है और दोनों प्रकारसे साध्य बताए गए हैं, उनसे फिर ये उत्कर्षसमा आदि जातियां बनती हैं। उनमेंसे उत्कर्षसमा जातिका लक्षण देखिये ! साध्यमें दृष्टान्त धर्मका समारोप करने वालेमें जिस कारणसे समारोप किया जा रहा है वह उत्कर्ष समा जाति है। जैसे किसीने अनुमान बताया कि आत्मा क्रियावान है क्रियाके हेतुभूत प्रयत्नका आश्रय होनेसे लोष्ठकी तरह। ऐसा कहनेपर प्रतिवादी दूषण देता है कि क्रियाका हेतुभूत प्रयत्न गुणका आश्रय होनेसे लोष्ठकी तरह आत्माको क्रियावान यदि सिद्ध किया जा रहा है तो लोष्ठकी तरह आत्माको स्पर्शवान भी हो जाना चाहिए। यह उत्कर्षसमा जातिमें वादीको दूषण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिया जा रहा है। जैसे कि वादीने कहा कि आत्मा क्रियावान है क्योंकि क्रियाको हेतुभूत प्रयत्न नामका गुण आत्मामें है जब कि आत्मामें प्रयत्न गुण है तो उस प्रयत्न गुणका काम होगा क्या ? क्रिया होगी। क्रिया प्रयत्न साध्य होती है। यों आत्मा क्रियावान बन गया तो वहां प्रतिवादी दूषण देते हैं कि यदि क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय जीव है, लोष्ठकी तरह और इसी कारण क्रियावान है। तो जैसे लोष्ठका उदाहरण देकर आत्माको क्रियावान सिद्ध किया है तो ऐसे ही लोष्ठका उदाहरण लेकर आत्माको स्पर्शवान भी हो जाना चाहिये। देखिये जैसे लोष्ठ क्रियावान भी है, स्पर्शवान भी है, तो लोष्ठका उदाहरण जिसके लिये दिया जा रहा है वह आत्मा क्रियावान भी हो और स्पर्शवान भी बन जाय। यदि स्पर्शवान नही माना जाता है तो आत्माको क्रियावान भी न माना जाना चाहिए क्योंकि लोष्ठके दृष्टान्त की अविशेषता है। क्रियाके हेतुभूत प्रयत्न गुणके आश्रयत्व नामक हेतुकी समानता है। लोष्ठ भी प्रयत्न गुणका आश्रय है, आत्मा भी प्रयत्न गुणका आश्रय है तो लोष्ठकी तरह जैसे आत्मा क्रियावान बना तो फिर लोष्ठकी तरह आत्मा स्पर्शवान भी हो जाय, वहाँ भी यह कहा जा सकता कि आत्मा स्पर्शवान है, क्योंकि क्रियाके हेतुभूत प्रयत्न गुणका आश्रय होनेसे। तो हम उत्कर्षसमा जातिमें, साध्यमें दृष्टान्त धर्मका समारोप करके उसके अतिरिक्त और कुछ भी सिद्ध किया जा रहा है, सो उसे उत्कर्षसमा जाति कहते हैं। तो यहाँ लोष्ठके उदाहरणसे जैसे आत्माको क्रियावान सिद्ध किया जा रहा है इसी तरह लोष्ठकी तरह आत्मा स्पर्शवान भी बन जाय और यदि स्पर्शवान न माने आत्माको तो आत्माको क्रियावान भी न मानना, क्योंकि हेतु तो दोनों जगह समान घट जाता है।

अपकर्षसमा जातिका परिचय—अब अपकर्षसमा जातिके सम्बन्धमें सुनिये उपकर्षसमा जातिका सिलसिला रखकर जो लोग उस पक्षमें ही क्रियावान जीवके साधनका प्रयोग करनेपर साध्यमें साध्यविशिष्ट धर्मीमें धर्मके अभावको दृष्टान्तमें आरोपित करते हुए बोलता है तो वह अपकर्षसमा जातिको बताता है। जैसे यह कहा गया कि जैसे लोष्ठ क्रियाको आश्रयभूत है और अव्यापक देखा गया है, तो उसीकी तरह आत्मा असर्वगत भी बन जाय। विपर्ययोंमें अर्थात् सर्वगतपनेमें वादीके द्वारा विशेष ही वाच्य होना चाहिए। तो यह उपकर्षसमा जाति भी अपकर्षसमा जातिके कारण वादीके वचनको दूषित नही करती, किन्तु हेतुमें ही कोई कमी रह जाती है उस हेत्वाभासके कारण अनुमान दूषित होता है।

वर्ण्यसमा व अवर्ण्यसमा जातिका वर्णन—अब परखिये वर्ण्यसमा और अवर्णसमा नामकी जाति। वर्ण्यसमा प्रथक् है, अवर्ण्य समाजाति प्रथक् है। वर्ण्य कहते हैं प्रसिद्ध करने योग्यको और अवर्ण्य कहते हैं प्रसिद्ध न करने योग्यको। तो वर्ण्यके साथ जो समान हो उसे कहते हैं वर्ण्यसमा जाति और जो अवर्ण्यके साथ समा हो उसे कहते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं अवर्ण्यसमा जाति, जैसे कि इसी साधनके कहे जानेपर कि आत्मा क्रियावान है, क्रिया के हेतुभूत प्रयत्न गुणका आश्रय होनेसे, तो इस साधनके जानेपर दूसरा प्रतिवादी अथवा जातिवादी उसे दूषित करता है कि यदि आत्मा क्रियावान वर्ण्य है, साध्य किया गया है तो लोष्ठ आदिक भी साध्य हो जायें, पक्ष हो जाय। यदि लोष्ठ आदिक अवर्ण्य हैं वे ख्यापनीय नही हो रहे तो आत्मा भी अवर्ण्य हो जाय। प्रसंगमें साध्य न बनेगा, क्योंकि हेतुकी तो दोनों जगह समानता है। यह वर्ण्यसमा और अवर्ण्यसमा जातिसे संयुक्त वक्तव्य चल रहा है, किसी भी प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया जा रहा है और उसका जो दृष्टान्त दिया गया है तो उसमें यह जातिवादी यह विकल्प करता है कि वह प्रतिज्ञा वर्ण्य है या अवर्ण्य, मायने प्रसिद्ध करने योग्य है या प्रसिद्ध न करने योग्य है? लोगोंको जताये जानेके लिए है, या छुपानेके लिऐ है ? यदि कहो कि लोगोंको जतानेके लिए है तब फिर दृष्टान्त भी जतानेके लिए हो जाय, क्योंकि हेतु जैसे पक्षमें पाया जा रहा है ऐसे ही दृष्टान्तमें भी पाया जा रहा है। तो पक्षकी तरह फिर दृष्टान्त बन गया। जैसे पक्षको, प्रतिज्ञाको आगे आगे रखते हो वहाँ साध्य को सभामें सिद्ध करते हो इसी तरह मूल बात, आगे रखनेकी बात, सभामें जाहिर करनेकी बात दृष्टान्त भी बना दो और यदि कहो कि साध्य अवर्ण्य है तो दृष्टान्त अवर्ण्य है, प्रसिद्धकरने योग्य नही है, दुनियाको सही जताने योग्य नहीं है। यदि पक्ष वर्ण्य है तो दृष्टान्त भी वर्ण्य होना चाहिये। इस तरह वर्ण समाजाति और अवर्ण समाजाति में साध्यकी सिद्धि न हो पायगी।

वर्ण्यसभा और अवर्ण्यसमाजातिकी दूषणाभासता – उक्त प्रकार वर्ण-समा और अवर्णसमा जातिका वर्णन करते हैं लेकिन अनुमान इस जातिके कारण दूषित हो गया सो बात नही किन्तु हेतुमें ही किसी प्रकारका दूषण है सो उस हेत्वाभासके कारण अनुमान दूषित होगा। वहाँ जातिके माननेकी जरूरत नही है और इस तरह वर्णसमा और अवर्णसमा बताकर यदि किसी साध्यका, पक्षका अनु-मानका खण्डन कर रहे हो तो कोई भी अनुमान बन नही सकता, क्योंकि जो भी अनुमान बनेगा उसका कोई दृष्टान्त होगा। तो यहाँ भी यह प्रश्न किया जा सकेगा कि बतलावो प्रतिज्ञा वर्ण्य है या अवर्ण्य दुनियामें प्रसिद्ध करने योग्य है या गोपनीय है। यदि प्रसिद्ध करने योग्य है तो फिर साध्यकी तरह, उस पक्षकी तरह इस दृष्टान्त को भी उसी दर्जेमें प्रसिद्ध करने योग्य करियेगा। दृष्टान्तको जरा सा कहकर फिर उसकी अपेक्षा करके आगे मत बढ़िये। जैसे प्रतिज्ञाको मुख्य बताया है, सिद्ध करने योग्य बताया है तो इसी प्रकार इस दृष्टान्तको भी सिद्ध करने योग्य कर लीजिए। ख्यापनीय बना लीजिए। और यदि दृष्टान्त अवर्णनीय है, प्रसिद्ध करने योग्य नही है तब साध्यको भी अवर्ण्य कर लीजिए इसे भी प्रसिद्ध मत करिये, इसे भी लोगोंको न जताइये। तो इस तरह वर्ण्यसमा और अवर्ण्यसमा जातिके द्वारा किसीके खण्डन करने पर फिर तो कोई भी अनुमान न बन सकेगा। सो वर्ण्यसमा और अवर्ण्यसमा जातिके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वारा अनुमानका निराकरण न होगा, किन्तु वादीने जो अनुमान कहा है उसमें हेत्वाभास निरखिये पक्षाभास निरखिये, तब जाकर वह अनुमान दूषित हो सकता है। तो जब हेत्वाभास आदिकके द्वारा अनुमान दूषित बनो तब फिर उससे ही दूषित कहलाया वर्ण्यसमा अवर्ण्यसमा जाति बोलकर जय और पराजयकी व्यवस्था न बनायी जा सकेगी, किन्तु प्रमाण और प्रमाणाभास सिद्ध करके ही जय पराजयकी व्यवस्था बनाई जा सकती है।

विकल्पसमा जातिका परिचय यौग सिद्धान्तमें एक विकल्पसमा नामकी जाति मानी गयी है। विकल्पका अर्थ है विशेष अथवा भेद। जो साध्यरूप धर्मका विकल्प हैं, उसको अन्य धर्मके विकल्पसे दूषित करने वाले पुरुषके विकल्प समाजाति बनती है। जैसे कि इस ही अनुमानमें कि इसमें क्रियाका आश्रय है क्योंकि क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय होनेसे। तो इस ही साधनके कहनेपर प्रतिवादी अथवा जातिवादी दूषण देता है कि जो साधन बनाया गया है कि आत्मा क्रियाके हेतुभूत गुणसे युक्त है, तो क्रियाका हेतुभूत गुण है प्रयत्न। उस प्रयत्नसे युक्त जितनी भी वस्तुवें हैं उनमेंसे कुछ तो गुरु (वजनदार) दिखते हैं जैसे कि लोष्ठ आदिक और कुछ चीजें लघु दिखती हैं जैसे कि वायु। तो क्रियाके हेतुभूत गुणसे युक्त होकर भी कुछ तो क्रियाका आश्रयभूत होता है, जैसे लोष्ठ आदिक, और कोई निष्क्रिय भी होता है जैसे कि आत्मा। तो इस जातिमें साध्य विशिष्ट धर्म हुआ क्रियावानपना तो यहाँ क्रियामें भेद डालकर अन्य धर्मके भेदसे दोष दिया गया है। जैसे कि जो जो प्रयत्न गुण वाले हैं वे गुरु (वजनदार) भी दिखते और लघु भी दिखते। अब यहाँ गुरु लघुकी कोई चर्चा तो न थी लेकिन इस जातिके द्वारा दूषण दिया जा रहा है। और यह बात स्पष्ट भी है कि प्रयत्न गुण वाले अर्थात् हलन चलन क्रिया करने वाले पदार्थोंमें कुछ पदार्थ गुरु (वजनदार) हैं जैसे लोष्ठ आदिक और कुछ पदार्थ लघु हैं जैसे वायु। तो इसी तरह क्रियाके हेतुभूत प्रयत्न गुणसे सहित होकर भी कुछ पदार्थ हुए क्रियावान और कुछ पदार्थ हुए निष्क्रिय, तो इसमें क्या आपत्ति? अन्य धर्मोंमें भी तो यह द्विधा भेद देखा गया है। इस तरहसे साध्यधर्ममें अन्य धर्मके विकल्प उठा उठाकर दूषण देवे तो वह विकल्पसमा जाति कहलाती है। लेकिन ऐसी विकल्पसमा जाति उठाकर अनुमान ही दूषित बनाया जाय तो इस तरह सच्चा अनुमान भी दूषित बन सकता है।

साध्यसमा जातिका परिचय—अब एक जाति मानी गई है साध्यसमा जाति। जातिवादीने कहा है कि साध्य हुआ करता है प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय, निगमन। इन सब अवयवोंसे जोड़ रखने वाला है साध्यधर्म। जिस किसी भी अनुमान में जो साध्य बनाया गया है वह साध्यरूप धर्म प्रतिज्ञा हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन सबके साथ मेल रखता है। तो पाँचों अवयवोंके साथ योग रखने वाला धर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साध्य होता है, उस ही को दृष्टान्तमें आरोपित करनेपर साध्यसमा जाति बनती है। जैसे कि उसी अनुमानमें कि आत्मा क्रियावान है, क्रियाके हेतुभूत प्रयत्नगुणका आश्रय होनेसे। तो अब इस साधनके बोलनेपर प्रतिवादी, जातिवादी बोलता है कि तो जैसे लोष्ठ है वैसे ही आत्मा मान लो क्योंकि दृष्टान्तमें लोष्ठका दृष्टान्त दिया है। तो जैसा जैसा लोष्ठ है वैसा ही वैसा आत्मा मान लिया जाय तो जैसा जैसा आत्मा है वैसा ही यह लोष्ठ भी हो जाय तो यहाँ सक्रिय यह साध्य बनाया है तो जैसे कि आत्माके लिए सक्रिय साध्य किया गया है ऐसे ही लोष्ठके लिए भी वह सक्रिय साध्य बन गया। तो अब किसको सिद्ध किया जा रहा है ? यह विवाद हो गया। लोष्ठमें साध्य सिद्ध किया जा रहा, क्योंकि अब तो यहाँ यह दृष्टि होगी कि जैसा लोष्ठ है वैसा ही आत्मा है। और फिर जैसा आत्मा होगा वैसा ही लोष्ठ होगा। तो अब लोष्ठ तो साध्यका लक्ष्य नहीं है, पक्ष नहीं है यहांपर कि लोष्ठको क्रियावान सिद्ध किया जा रहा हो सो लोष्ठ क्रियावान जैसे साध्य नहीं है इसी प्रकार आत्मा भी क्रियावान साध्य मत हो। यहाँ दृष्टान्तको और पक्षको एक कोटिमें रखकर दोनोंमें साध्यकी बात कही जा रही है, पर आत्माको सक्रिय बनाना साध्य है। लोष्ठको सक्रिय बनाना साध्य नहीं है, किन्तु यहाँ पक्ष और दृष्टान्त हो गए बराबरके। अब जैसे लोष्ठ साध्य है सक्रिय होना उसी प्रकार आत्मामें भी क्रियावान होना साध्य है और, जैसे आत्माको क्रियावान सिद्ध करना साध्य है इसी प्रकार लोष्ठमें भी क्रियावान होना साध्य बन जायगा। और लोष्ठ यदि क्रियावान साध्य नहीं बताते तो आत्मामें क्रियावान साध्य मत हो और यदि आत्माको क्रियावान साध्य कहते हो तब फिर कोई विशेष अन्तर बताना चाहिये। इस प्रकार यह साध्यसमा जाति बताई गई है।

उक्त जातियोंकी दूषणाभासता तथा जातिमात्रसे जय पराजयकी अप्रसिद्धि—इन सब जातियोंमें अर्थात् उत्कर्षसमा, अपकर्षसमा, वर्ण्यसमा, अवर्ण्यसमा, विकल्पसमा और साध्यसमा इन जातियोंमें दूषणाभासता है। यह दूषण नहीं है, यहाँ झूठा दूषण लगाया जा रहा है, क्योंकि सद्भूत साधनमें जो कि दृष्टान्त आदिक सामर्थ्यसे युक्त हैं, अब ऐसे साधनके होनेपर किया क्या गया था यह कि साध्य और दृष्टान्तमें धर्मसाध्यके विकल्प बना दिये थे। तो साध्य अथवा दृष्टान्तमें धर्म विकल्प कर देने मात्रसे प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। जहाँपर लौकिक या अलौकिक पुरुषोंमें बुद्धिसाम्य हो उस ही को तो दृष्टान्तमें रखा जाता है। वह साध्य कैसे बनेगा ? कोई भी अनुमान बोला गया है, वादीने बोला है तो उस अनुमानका समर्थन करनेके लिए जो दृष्टान्त देगा वह दृष्टान्त वादीकी बुद्धिमें भी जच रहा है और प्रतिवादीकी बुद्धिमें भी जच रहा है। जब बुद्धिमें वह दृष्टान्त जच रहा है। तो अब साध्य बनानेका प्रसंग क्या है ? साध्य तो उसे बनाया जाता है जो कि असिद्ध हो, इष्ट हो, अबाधित हो। जब दृष्टान्तवादी व प्रतिवादीकी सम्मतिसे ही सिद्ध है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो उसको साध्य बनाकर विकल्प उठाकर फिर उसमें इन जातियोंका दूषण देना, यह तो संगत नही है। तो प्रथम तो यह बात है। दूसरी बात यह है कि यह जो जातिरूप दूषण बनाया गया है वह दूषण जातिके कारण न बनेगा। किन्तु हेतु झूठा हो पक्षाभास हो, जो इससे पहिले बताये गये हैं हेत्वाभास आदिक वे दूषण आते हों तो उससे अनुमान निराकृत होता है। जातिमात्रसे अनुमानका निराकरण नहीं किया जा सकता है। जिन आभासोंसे दूसरोंके अनुमानका निराकरण होता है उनका वर्णन विशेषरूपसे किया ही गया है। तो जय और पराजयकी व्यवस्था प्रमाण और प्रमाणाभाससे होती है जातिके कारण नही। वादीने प्रमाण उपस्थित किया, उसपर प्रतिवादीने दोष डाला, उस दोषको अगर दूर कर सके तो वादीकी जीत है, प्रतिवादीकी हार है। और उस दोषको वादी दूर न कर सके तो प्रतिवादीकी जीत हैं और वादीकी हार है। किसी वादीने प्रमाणाभास ही डाल दिया और उसमें दोष प्रतिवादीने दिखाया। अब उस दोषको अगर नही टाल सकता तो प्रमाणाभासवादी की हार है प्रतिपक्षीकी जीत है। तो जय पराजयकी व्यवस्था प्रमाण, प्रमाणाभासमें दूषण आने न आनेके बलपर है कहीं जातिके द्वारा नहीं। जैसे छलसे बुद्धिमानोंकी दृष्टिमें जीतहार नही है इसी प्रकार जाति उपस्थित करके भी बुद्धिमानोंकी दृष्टिमें जीत और हार नही होती।

प्राप्तिसमा व अप्राप्तिसमा जातिका वर्णन—अब प्राप्तिसमा जातिका वर्णन करते हैं। प्राप्तिसमाका लक्षण यौगसिद्धान्तमें किया गया है कि ठीक साधन प्रयुक्त करनेपर प्राप्तिके द्वारा जो दूषण दिया जाता है उसे प्राप्तिसमा जाति कहते हैं। और, इसी प्रकार अप्राप्तिसमाका भी लक्षण किया गया है कि सम्यक साधनके प्रयोग करनेपर अप्राप्तिके द्वारा जो दूषण दिया जाता है उसे अप्राप्तिसमा कहते हैं। जैसे कि कुछ भी अनुमान बोलनेपर प्रतिवादीके द्वारा यह पूछा जाय कि यह बतलावो कि हेतु साध्यको पा करके साध्यको सिद्ध करता है या हेतु साध्यको न पा करके सिद्ध करता है? यदि कहो कि हेतु साध्यको प्राप्त करके सिद्ध करता है साध्यको तो जब हेतु और साध्य दोनों ही प्राप्त कहलाते तो दोनों जब एक साथ सम्भव हो गए तो उन दोनोंमेंसे एकको तो हेतु मान लिया और दूसरेको साध्य मान लिया यह बात कैसे मान ली गई। जब हेतु और साध्य दोनों ही प्राप्त हैं एक साथ उनका सत्व है तो उनमेंसे एकमें हेतुता कर देना और दूसरेमें साध्यता जोड़ देना, यह कैसे बना? इस तरहसे जो दूषण दिया जाता है उसे प्राप्तिसमा जाति कहते हैं। यह तो प्राप्तिसमा जातिके सम्बन्धकी बात हुई। अब यदि हेतु साध्यको न पा करके साध्यको सिद्ध कर रहा है तब तो कोई सा भी एक हेतु सारे साध्यको सिद्ध करदे, तब हेतु साध्यको न पाकर अगर साध्यको सिद्ध करता तो एक कोई सा हेतु दिया जाय वह एक ही हेतु सब साध्योंको सिद्ध करदे, क्योंकि अब तो साध्यकी प्राप्ति बिना हेतु साध्यको सिद्ध करने लगा ऐसा माना जा रहा है, परन्तु क्या ऐसा कहीं देखा जाता? अप्राप्त प्रदीप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंका प्रकाशक नही देखा गया, इस तरह दूषण देनेको अप्राप्तिसमा जाति कहते हैं।

प्राप्तिसमा व अप्राप्तिसमा जातिकी दूषणाभासता प्राप्तिसमा व अप्राप्तिसमा ये दोनों ही जातियाँ दूषणाभास रूप हैं। ये सचमुचमें दूषण नही हैं, क्योंकि कहीं–कही तो हेतु प्राप्त साध्यको सिद्ध करने वाला है। और, कहीं–कहीं हेतु अप्राप्त साध्यको सिद्ध करने वाला है। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, तो यहाँ धूम भी प्राप्त है, अग्नि भी प्राप्त है, उसका अनुमान बनाया गया। धूम अग्निसे सम्बन्धित भी है, एक साथ भी है और फिर भी अनुमान सही है। तब प्राप्तिसमा जातिका कोई मूल्य नही रहता। और देखिये! अनुमान बनाया गया कि अब रोहिणी का उदय होगा कृतिकाका उदय होनेसे तो कृतिकाका उदय रोहिणीके उदयमें तो अप्राप्त है, कृतिकाका समय और है, रोहिणीके उदय होनेका समय और है। कृतिका और रोहिणी एक साथ तो सम्भव नही। अथवा अनुमान बनाया कि कल मंगलवार होगा आज सोमवार होनेसे। तो हेतु जो है 'आज सोमवार है' वह कलके मंगलवारमें तो नही प्राप्त है। कलमें मंगल है आजमें सोम, तो अप्राप्त भी साध्य। इस हेतुसे सिद्ध कर दिया गया तो प्राप्तिसमा और अप्राप्तिसमा जाति वास्तविक दूषण नही है, यह दूषणाभास है।

प्रसङ्गसमा जातिका परिचय—अब एक जाति है प्रसंगसमा जाति। दृष्टान्तको भी साध्य विशिष्टरूपसे जाननेमें कोई साधन कहना चाहिए, इस प्रकार प्रसगके साथ दूषण देना प्रसगसमा जाति कहलाता है। जैसे कि इसी अनुमानमें कि आत्माको क्रियाका आश्रय होना चाहिए क्योंकि क्रियाके हेतुभूत गुणका सम्बन्ध होने से जैसे लोष्ठ। तो इस अनुमानमें जब लोष्ठ बोला गया तो उस समय प्रतिवादी दूषण देता है कि लोष्ठका उदाहरण तो दे दिया, पर लोष्ठको सिद्ध कुछ नही किया। लोष्ठ क्रियावान है क्रियाके हेतुभूत गुणक याने प्रयत्नका सम्बन्ध होनसे। दृष्टान्तमें इस तरहसे हेतु तो कहा हं नही गया और हेतुके बिना साध्यकी सिद्धि होती नही। तो दृष्टान्त भी सिद्ध नही होता। इस तरह दृष्टान्तको भी साध्य विशिष्ट रूपसे जाननेके लिए साधन कहना चाहिए और तुमने कहा नही। तो यह प्रसंगसमा जाति का दूषण लग गया। इस तरह कहकर जातिवादी अपनी जीत जताना चाहता है और उस वादीकी हार कराना चाहता है। लेकिन बुद्धिमान लोग सब जानते हैं कि प्रसंगसमा जाति कहकर जो दूषण दिया गया है वह दूषण नही है, दूषणाभास है।

प्रसंगसमा जातिकी दूषणाभासताका प्रतिपादन देखिये जैसे रूपको देखने वाले पुरुषोंको ग्रहण करना पड़ता है और ये दिखते हैं— लेकिन स्वयं प्रकाशमान प्रदीपको देखने वाले पुरुषोंको प्रदीप ग्रहण नही करना पड़ता। जैसे कोई कमरे मेंसे छतरी वगैरह उठाना चाहता है तो उसे दीपक ग्रहण करना पड़ेगा। दीपक जल रहा हो या हाथमें टार्च लेवें तो रूपको देखनेकी इच्छा करने वाले पुरुषोंको प्रदीपका

Version 1

ग्रहण करना पड़ता है, यह बात तो विश्वासके योग्य है, लेकिन कोई प्रदीपको उठानेके लिए आया और वह फिर उस प्रदीपको ग्रहण करनेके लिये दीपक हाथमें ले, ऐसा तो नही देखा गया। दीप तो स्वयं प्रकाशमान है। उस दीपको ढूंढ़नेके लिये दूसरे दीपकको ग्रहण करनेकी जरूरत नही रहती है। उसी तरह जानो कि इस अनुमानमें आत्माको क्रियावत्त्व सिद्ध किया जा रहा है। तो साध्य क्या हुआ? आत्माका क्रियावत्त्व। उसकी प्रसिद्धि करनेके लिए, उसको सबके दिमागमें सही जचानेके लिए लोष्ठका दृष्टान्त दिया गया। अब दृष्टान्तरूप लोष्ठकी सिद्धिके लिये अन्य साधनकी आवश्यकता नही रहती, क्योंकि दृष्टान्त वही दिया जाता है जो वादी और प्रतिवादी दोनोंको ही विवादका विषय नही होता। दोनों ही जिसपर राजी हों ऐसा ही दृष्टांत दिया जाता है। तो ऐसे दृष्टान्तमें स्वयं ही दृष्टांतपना आयगा। अब वहाँ हेतु नया और देना यह निरर्थक है, उसका कोई फल नही है। तो प्रसंगसमा जाति वास्तविक दूषण न रहा। यह तो व्यर्थका विकल्प पैदा करके दूसरेका मुख बंद करनेकी ही बात है। इसको बुद्धिमान लोग स्वीकार न कर सकेंगे कि प्रसंग समा जाति कहकर यह प्रतिवादी तो जीत गया और वादी हार गया। विद्वान लोग तो यह देखेंगे कि इसमें समर्थ वचन हैं अथवा नही। दृष्टान्त तो किसी बातको स्पष्ट करनेके लिए दिया जाता है। कोई दृष्टान्त न भी दे तो भी तत्त्वकी सिद्धि हो जाती है। दृष्टान्त तो स्पष्टताके लिए दिया जाता है। और, दृष्टान्त ऐसा ही दिया जायगा जो वादीको भी सम्मत हो और प्रतिवादीको भी सम्मत हो। जब दोनों माने गए तब किसी दृष्टान्तको अब उसमें साध्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नकी आवश्यकता नही है।

प्रतिदृष्टान्तसमा जातिका वर्णन—एक जातिका नाम है प्रतिदृष्टान्तसमा जाति, प्रतिदृष्टान्तरूपसे दूषण देनेका नाम है प्रतिदृष्टासमा जाति। जैसे कि यही अनुमान किया गया कि आत्मा क्रियावान है क्रियाहेतुभूत गुणका आश्रय होनेसे। तो इस अनुमानमें साधनका प्रयोग करनेपर दूसरा प्रतिवादी, जातिवादी प्रतिदृष्टान्तके द्वारा दूषण देता है किस प्रकार? कि क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय आकाश भी है और वह निष्क्रिय देखा गया है। उस ही तरह आत्मा भी निष्क्रिय हो जायगा। कोई पूछे कि आकाशमें ऐसे किस गुणकी आश्रयता है जो क्रियाका हेतुभूत है? तो सुन लीजिये! वायुके साथ जो संयोग हुआ है आकाशका, द्रव्य-द्रव्यमें संयोग हुआ करता है यौगसिद्धान्तमें। आकाश भी द्रव्य है, वायु भी द्रव्य है और जब वायु चलती है तो वायुके साथ आकाशका संयोग हुआ या नहीं हुआ? लेकिन तीन कालमें भी आकाश में क्रिया सम्भव नही है। जैसे आत्मा चलता है, पुद्गल चलता है, उस तरह क्या आकाश भी चलता है? और क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय तो बन गया अर्थात् वायु का और आकाशका संयोग है। कोई यह कहे कि वायुके साथ जो आकाशका संयोग है वह क्रियाका हेतुभूत नहीं है, यह भी बात सारहीन है, क्योंकि वायुके संयोगसे वन-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्पतिमें क्रिया होती कि नही ? वृक्ष चलने लगता । कहीं कहीं वृक्ष तो उस वायुके वेग के वाले संयोगसे गिर पड़ते हैं, तो वायुके संयोग से ही वनस्पतिमें क्रिया हुई । तो ऐसा वह संयोग क्रियाका कारणभूत है । वनस्पतिमें क्रियाके कारणभूत वायुके संयोगके समान वायुका संयोग आकाशमें भी है, तो वायुसंयोगकी समानता तो आ गई । आकाशमें वायुसंयोग, वनस्पतिमें वायुसंयोग । तो जब वनस्पतिमें वायुका संयोग होने से वनस्पतिमें क्रिया बन गयी तो आकाशमें वायुका संयोग होनेसे आकाशमें भी क्रिया बन जायगी । परन्तु यह वायु आकाशमें जो क्रिया नही पैदा करती है वह आकारण होनेसे नही होती, ऐसी बात नही है, किन्तु परममहापरिमाणसे प्रतिबद्ध होनेके कारण नही होती अर्थात् आकाश सर्वव्यापक है तो अब क्रिया कहाँ सम्भव है ? तो परम-महापरिमाण वाला होनेसे आकाशमें क्रिया नही है ।

वायु वनस्पति संयोग व वाय्वाकाश संयोगकी विसदृशता सिद्ध करने का वितर्क -- अब शंकाकार कहता है कि क्रियाका कारणभूत वायु और वनस्पतिका संयोग और किस्मका है और वायु और आकाशका संयोग और किस्मका है। वनस्पति और वायुका संयोग तो क्रियाका कारणभूत है । उसके समान वायु और आकाशका संयोग नही है, वह क्रियाका कारणभूत नही है । समाधानमें कहते हैं कि इस तरहका विकल्प उठानेपर तो कोई सा भी हेतु अनैकांतिक नही बन सकता है । अनैकांतिक हेतु उसे कहते हैं जो पक्षमें भी जाय, सपक्षमें भी जाय और विपक्षमें भी जाय, लेकिन जैसे कि यहाँ कह दिया गया है कि वायु और वनस्पतिका संयोग तो क्रियाका कारणभूत है, पर वायु और आकाशका संयोग क्रियाका कारणभूत नही है । वायु और वनस्पतिके संयोगकी तरह वायु और आकाशका संयोग नही है । यों कह देनेपर सभी उन अनुमानों में जो कि अनैकान्तिक दोषसे दूषित है यह कहा जा सकता है । जैसे अनुमान बनाया कि शब्द नित्य है मूर्त होनेसे सुख आदिककी तरह । अब देखिये यह अनुमान अनैका-न्तिक हेत्वाभास होनेसे गलत है । शब्द यद्यपि अनित्य है लेकिन हेतु जो दिया गया है कि मूर्त होनेसे । तो यह तो स्वरूपासिद्ध हेतु है और साथ ही जो जो अमूर्त होता है वह वह अनित्य होता है, यह बात तो नही बनती । इस अनुमानमें जो मूर्तत्व हेतु दिया गया है वह मूर्तत्व हेतु आकाशमें भी है, अमूर्त अन्य भी अनेक पदार्थ हैं, काल भी अमूर्त है लेकिन वह अनित्य नही है । तो मूर्तत्व हेतु अनित्य साध्यके विरुद्ध नित्य द्रव्योंमें भी पहुँच गया, इस कारण वह अनैकांतिक हेतु हुआ, लेकिन कोई यह कह बैठे कि वाह ! शब्दमें जो अमूर्तत्व है वह और किस्मका है और आकाशमें जो अमूर्तत्व है वह और किस्मका है । शब्दमें रहने वाले अमूर्तत्वके सदृश आकाशमें रहने वाला अमूर्तत्व नही है । तो फिर आकाशके साथ अमूर्तत्व हेतुसे अनित्य साध्यकी सिद्धि करने के लिए अनैकान्तिक दोष कैसे बनेगा ?

व्यक्तित्वदृष्टिसे हेतुवोंको विभन्न माननेपर सकल अनुमानोंके उच्छेद

Version 1

का प्रसंग—व्यक्तिरूप हेतुताके कारण पक्ष विपक्षमें प्राप्त हेतुको विभिन्न माननेपर तो समस्त अनुमानोंका उच्छेद हो जायगा, क्योंकि सदृशतासे ही अनुमानकी प्रवृत्ति होती है और सदृशताके बारेमें वहाँ यह अड़ास लगा दिया जावगा कि हेतु जैसा वहां है वैसा ही ठीक यहाँ नही है। जो धूमके धर्म हैं अर्थात् पत्तों वाली अग्नि है, उसमें धुवाँ बहुत उठता है। तो जो धूमके धर्म हैं वे ही धर्म कही रसोई आदिकमें भी धूममें देखे गये हैं क्या, जिस धूमका धर्म रसो आदिकमें देखा गया है ना, वह ही धर्म तो अन्यत्र नही देखा जाता है हाँ उन्हीं धर्मोंसे सदृश होनेके कारण धूम धर्मसे अनुमान बनाया जाता है। तो सदृशतासे ही तो अनुमान बना। ठीक व्यक्तिगत जो धूम धर्म रसोईघर में दीखा, वह ही तो अन्यत्र नही है, लेकिन सदृशतासे अनुमान बनता है। जैसा धूम रसोईमें था वैसा ही यहाँ दिख रहा है इस कारण वहाँ अग्नि है तो सदृशतासे अनुमान बनता है। लेकिन वहाँ भी कोई कह बैठे कि जो धूम वहाँ था वही यह धूम नही है तो कोई भी अनुमान नही किया जा सकता। इस तरह समस्त अनुमानोंका उच्छेद हो जायगा। इस कारण वादी जो कि किसी हेतुमें अनैकान्तिकपना दिखाना चाहता है और पर्वत आदिकमें अनुमानकी प्रवृत्ति बताना जाहता है तो उसको उस धर्मके सदृश पक्षगत हेतुका धर्म मानना चाहिए। इस प्रकार क्रियाका कारणभूत वायु वनस्पतिके संयोगके शदृश वायु आकाशका संयोग भी है, इस कारण वह क्रियाका कारण ही होना चाहिए और उस प्रकार प्रतिदृष्टान्तके द्वारा याने आकाशको उसके मुकाबलेमें रखकर जो दूषण दिया जाता है वह प्रतिदृष्टान्तसम नामका प्रतिषेध है लेकिन यह प्रतिषेध अयुक्त है। क्योंकि यह प्रतिषेध दुषणाभासरूप है। वह किस तरह ? यदि जाति वादी यह बोलता है कि जिस प्रकार यह तुम्हारा दृष्टान्त लोष्ठ आदिक है उसी प्रकार हमारा भी यह दृष्टान्त आकाश आदिक है। तो उस समय एकका व्याघात हो जाता है। एकका दृष्टान्तपना होनेपर दूसरेका अन्यका अदृष्टान्तपना हो ही जायगा। विरुद्ध दो दृष्टान्त तो एक जगह नही समाते, दोनोंमें दृष्टान्तपना आ जाय यह बात नही बन सकती। अगर वह इस प्रकार बोलता है कि जैसा उसका यह दृष्टान्त नही है तो इसी प्रकार यह हमारा भी दृष्टान्त नही है। ऐसा कहनेमें भी व्याघात आता है क्योंकि प्रतिदृष्टान्त जो कि शब्दके रूपमें रखा गया है उसे अगर अदृष्टान्त मान लेते हैं तो दृष्टान्त में भी अदृष्टान्तपनेका व्याघात हो जायगा। क्योंकि उसका भी कोई जब प्रतिदृष्टान्त न मिलेगा तो प्रतिदृष्टान्तके अनुभवमें उसको दृष्टान्तपनेकी उपपत्ति हो जायगी, और दृष्टान्तका अदृष्टान्तपना माननेपर प्रदिष्टान्त अदृष्टान्तपनेका व्याघात हो जायगा। दृष्टान्तके अभावमें इसमें क्योंकि तत्वकी उपपत्ति होने लगी है।

प्रतिदृष्टान्तसमा जातिकी दूषणाभासताका स्पष्ट परिचय—निष्कर्ष यह है कि प्रतिदृष्टान्त बोलकर जो एक दूषण बताया गया है वह दूषण नही है किन्तु वह दूषणाभास है। यदि कोई यह कहता है कि आत्मा क्रियावान है। क्रियाके हेतुभूत गुणका वह आश्रय है तो वहाँ यह तो निरखना चाहिए कि क्रियाका हेतुभूत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुण प्रयत्न, वह उसके आश्रयके उपादानभूत हैं। द्रव्यमें गुणका आश्रय हुआ है। और ऐसा होता ही है। गुण द्रव्यके आश्रय होता है। लेकिन प्रति दृष्टान्त देकर वादीके कथनको झुटलानेके लिये जो यह बात कही है कि क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय आकाश है और वह निष्क्रिय है। तो क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय आकाश है और वह निष्क्रिय है, तो क्रियाके हेतुभूत गुणका आश्रय किस तरह है ? इसको बताते हैं यों कि जब वायु चली तो वायुका और आकाशका संयोग बन गया। अब यह संयोग तो द्रव्य-द्रव्यका है। प्रथम तो यह बात है कि आकाश अमूर्तिक है, आकाशमें वायुका संयोग हो ही नही सकता। मूर्त पदार्थमें मूर्त पदार्थका संयोग होता है, उस दृष्टिसे तो यदि कोई यह भी कह दे कि शरीरका और आत्माका संयोग नही है इस समय भी नही है तो वहकह सकता है कि हाँ, आत्माका और शरीरका संयोग नहीं है, क्योंकि आत्मा अमूर्त है, संयोग मूर्तमें होता है मगर यह तो उस संयोगसे बढ़कर भी बन्धन है ना, निमित्त नैमित्तिक भावका बन्धन है। निमित्त नैमित्तिक भावका, आत्मा का और कर्मका बन्धन होकर भी आत्मा और कर्मका संयोग कभी भी नही होता है। तो ऐसी जब वायु चली तो चली वह, उसका वृक्षसे तो संयोग हो सकता है क्योंकि वायु भी मूर्तिक है, वृक्ष भी मूर्तिक है, लेकिन वायुके चलनेका स्थान तो है वह जो आकाशका स्थान है, लेकिन वायुका और आकाशका संयोग नही हुआ करता। तो वादीके द्वारा तो यह कहा गया था, वादीका तो यह अभिप्राय था कि चूँकि प्रयत्नका आधार है आत्मा, इस कारणसे क्रियावान है, लेकिन उसको अन्य रूपमें ढालकर प्रतिवादी यहाँ प्रतिदृष्टान्तसमा जाति बना रहा है। वह प्रतिदृष्टान्तसमा जाति दूषण नहीं है, वह तो दूषणाभास है उससे तो अनुमानमें दूषण नही आता। तो प्रतिदृष्टांत समा जातिको दूषणरूपमें देने वालेके अन्दरमें आशय खराब है। जैसे उदाहरण विरुद्ध देकर, कुछ थोड़ीसी समानता दिखाकर, समानता बनवाकर और उस दृष्टान्तको दूषित कर देना और साध्यको सिद्ध न करने देना यह जातिवादीका अभिप्राय है। समर्थ वचन कुछ नही है। समर्थ वचनसे ही जीतकी व्यवस्था है। प्रतिदृष्टान्तसमा जातिके द्वारा प्रतिवादीकी जीत हो गयी है। और वादीकी हार हो गयी हो यह बात विद्वानोंकी समझमें कभीं नही आ सकती। विद्वजन तो समर्थ वचनके द्वारा जय और पराजयकी व्यवस्था बनाया करते हैं, प्रमाण देते हैं। प्रमाणमें दूषण दिया जाय, दूषणका परिहार हो गया तो वादीकी जीत है, दूषणका परिहार न हो सका तो वादीकी हार है और प्रतिवादीकी जीत है, किन्तु प्रति,दृष्टान्तसमा जाति बताकर जय पराजयकी व्यवस्था नही बनायी जा सकती।

अनुत्पन्नसमा जातिका वर्णन– यौग सिद्धान्तमें एक अनुत्पत्तिसमा जाति मानी गयी है जिसके लक्षणमें उनके न्यायसूत्रमें कहा गया है कि उत्पत्तिसे पहिले कारणका अभाव होनेसे जो प्रतिकुलता होती है उसे अनुत्पत्तिसमा जाति कहते हैं। जैसे अनुमान बनाया गया कि शब्द विनश्वर है प्रयत्नके बाद होनेसे कटक आदिककी

http://sahjanandvarnishastra.org/

तरह। जैसे कटक आदिक आभूषण स्वर्णकारके प्रयत्नके बाद होते हैं अतएव विनश्वर हैं इसी प्रकार ये शब्द भी पुरुष आदिकके प्रयत्नपूर्वक होते हैं इस कारण ये भी विनश्वर हैं ऐसा वादीने अनुमान किया। उसपर प्रतिवादी अथवा जातिवादी कहता है कि उत्पत्तिसे पहिले जो शब्द अनुत्पन्न है उसमें विनश्वरताका जो कारण प्रयत्नके बाद होना कहा गया है वह तो नही है। अर्थात् शब्द जब प्रयत्न नही हुआ उससे पहिले अर्थात् अनुत्पन्न स्थितिमें उस शब्दमें प्रयत्नके बाद होना ऐसा कारण तो नही पाया जा रहा है इससे सिद्ध है कि शब्द अविनश्वर है और शाश्वत शब्दका प्रयत्नके बाद जन्म नही होता है। इस प्रकार अनुत्पन्नसमा जातिके ढंगसे वादीके अनुमानको दूषित करना सो अनुत्पन्नसमा जाति कहलाता है।

अनुत्पन्नसमा जातिकी दूषणाभासता—यह अनुत्पन्नसमा जाति याने अनुत्पत्तिके द्वारा प्रतिकूलता बताना यह दूषणाभास है। क्योंकि न्यायका इसमें अत्यन्त उल्लंघन है बात यह है कि उत्पन्न हुए शब्दको यहाँ धर्मी बनाया गया है। उत्पन्न हुआ शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे। तो यहाँ उत्पन्न हुए ही शब्द धर्मीका प्रयत्नान्तरीकपना अथवा उत्पत्ति धर्मकपना बताया गया है। अनुत्पन्न शब्दकी तो कोई बात ही नही की गई है। और फिर उत्पत्तिसे पहिले शब्दका तो असत्त्व है। शब्द है ही नही, फिर यह उलहना किसके आश्रय किया जा रहा है। शब्द उत्पन्न होनेसे पहिले असत् है। असत्में तो कोई धर्म कहा ही नही जा सकता उत्पन्न हुए शब्दमें ही विनश्वरता की सिद्धि की जा रही है। उत्पत्तिसे पहिले शब्द ही नही है, फिर यह उलहना किसमें दिया जायगा। अनुत्पन्न अथवा असत् शब्दमें यह प्रयत्नके बाद हुआ अथवा अनित्य हुआ यह व्यपदेश नही किया जा सकता। तो शब्द ही नही है, उत्पत्ति ही नही हुई है उसमें अर्थात् असत्में यह व्यपदेश करना कि यह प्रयत्नके बाद हुआ अथवा अनित्य है यह कैसे बन सकता है? यदि असत् पदार्थमें किसी धर्मका व्यपदेश किया जाने लगे तो खरविषाण आदिक असत् पदार्थोंमें भी कुछसे कुछ व्यपदेश कर दिया जाना चाहिए तो उत्पत्तिसे पहिले शब्द असत् रहा फिर यह उलाहना न बना। यदि कहो कि उत्पत्तिसे पहिले भी सत् है शब्द, तो यों सत्त्व मान लेनेपर फिर तो प्रयत्नके बाद हुआ इस प्रकारका कारण नश्वरत्वकी सिद्धिमें देना ठीक ही बैठ गया। फिर कैसे इसका प्रतिषेध किया जा रहा है? याने शब्दको मान रहे हो तुम उच्चारणसे पहिले भी, अब उत्पत्तिसे पहिले जो शब्दकी हालत है और उत्पत्तिके बाद जो शब्दकी हालत है उसमें फर्क रहा ना। उत्पन्न हुआ उसके बाद फिर न रहा। तो देखो! प्रयत्नके अनन्तर हुआ इस कारण वह नश्वर सिद्ध हो गया तो यहाँ अनुत्पत्ति समाजातिका दूषण देना यह दूषणाभास है।

संशयसमा जातिका वर्णन—एक जातिका नाम है संशयसमा जाति। किसी भी वस्तुमें कुछ सिद्धि की जा रही है जैसे शब्दमें प्रयत्नानन्तरीयकत्वके द्वारा अनित्यत्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साध्य किया जा रहा है और उदाहरण दिया घटका तो घट वस्तुमें जो सामान्य धर्म है वह भी तो वस्तुके साथ सिद्ध हो रहा है। और साधनभूत धर्म ऐन्द्रियकत्वकी दोनों में है तो ऐसी स्थितिमें एक वस्तु तो अनित्य है व उसका सामान्य घटत्व नित्य है अतः वहाँ संशयकी गुंजाइस है। जैसे कि सामान्य और घट अर्थात् घटत्व और घट इनमें ऐन्द्रियकपना समान है, अर्थात् इन्द्रिय द्वारा घटका ज्ञान हो रहा है और घटके ज्ञानके साथ घटत्वका भी बोध हो रहा है, तो सामान्य और घटका इन्द्रियपना समान होनेपर भी अब नित्य और अनित्यकी सदृशतासे एक संशय हो जाता है। तो ऐसा संशय बताना संशय समाजाति है जैसे की वादीने कहा कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होने से घटकी तरह। तो ऐसा कहनेपर दूसरा कोई प्रतिवादी अथवा जातिवादी कोई उसमें वास्तविक दूषण नहीं निरख रहा है तो वह संशयके साथ वह दूषण देता है कि देखो! प्रयत्नके बाद होनेकी बात होनेपर भी शब्दमें शब्द सामान्यके साथ याने शब्दत्वके साथ साधर्म्य ऐन्द्रियकत्व नित्य घटत्वके साथ भी है और अनित्य घटके भी साथ है। तो वहाँ संशय उपस्थित कर देना कि शब्दमें नित्यत्व धर्म है अथवा अनित्य धर्म है, इसे संशयसमाजाति कहते हैं। यहाँ अनुमान यह बनाया गया कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे घटकी तरह। तो जैसे घटमें नित्य पटके साथ घटत्व भी पाया जा रहा है, सो जैसे–घट ऐन्द्रियक है ऐसे ही घटत्वका भी बोध हो रहा और घट अनित्य है और घटत्व नित्य है और दोनोंका यहाँ ऐन्द्रियक धर्मके द्वारा सादृश्य पाया जा रहा है तो उसमें संशय हो गया, इसी प्रकार शब्दत्वको छोड़कर शब्द अलग तो नही हैं. सो जैसे शब्द प्रयत्नके बाद हुआ है उसी प्रकार शब्दत्वमें भी माना जायगा कि वह प्रयत्नके बाद हुआ है उसी प्रकार शब्दत्वमें भी माना जायगा कि वह प्रयत्नके बाद होनेके साधर्म्यसे शब्दमें अब यह संशय हो गया कि शब्द नित्य है या अनित्य क्योंकि शब्दत्व नित्य है वे शब्द अनित्य बता रहे हैं और सदृशता दोनोंमें है तब फिर नित्य है या अनित्य ? इस प्रकार संशय उठाकर दूषण देना सो संशय समा जाति कहलाता है।

संशयसमा जातिकी दूषणाभासता––यह संशय समा जाति वास्तविक दूषण नही है, इसमें दूषणाभास है, क्योंकि जो कुछ भी यहाँ प्रतिवादीमें हेतु दिया गया है जैसे कि एकेन्द्रियकत्व वह शब्दके अनित्यत्वके साथ प्रतिबन्ध नही रखता। अविनाभावरूप नियम नही रखता। जैसे कि प्रातःकाल कुछ अंधेरे उजेलेमें घूमते हुए जा रहे हों और सामने खड़ा हुआ कोई पुरुष दीखा, उसे देखकर पहिले तो यह संशय हो गया कि यह पुरुष है या ठूठ ? लेकिन जब केश बन्धन आदिक देखकर विशेषरूप से यह निश्चय कर लिया कि यह पुरुष है तो अब जो धर्म ऐसे पाते जाते हैं कि पुरुष में भी घटित होता है और ठूठमें भी घटित होता है जैसे कि ऊँचाईपना। ऊँचाईपना ठूठमें भी है और पुरुषमें भी है। लेकिन अब इस साधर्म्य मात्रसे इसपर संशय नही हो सकता क्योंकि ऊँचाईका साधर्म्य होनेपर भी विशेष चिन्होंके द्वारा यह निश्चय कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिया गया है कि यह पुरुष है अब अन्य साधर्म्य देखकर संशय बताना ठीक नही है। इसी प्रकार प्रयत्नके बाद हुए इस विशेषणके द्वारा शब्दमें अनित्यपना निश्चित कर दिया गया। अब ऐन्द्रियकत्व पाये जानेसे वहां संशय नही किया जा सकता। अथवा किसी दृष्टिसे घट और घटत्वमें किसी साधर्म्यकी समानता लेकर उसमें कोई संशय बताये तो वह युक्त नही है। दृष्टान्तमें घट और घटत्वकी युगपत्ता बताकर ऐन्द्रियकत्व धर्मके द्वारा उसमें संशय बताये तो वह युक्त नही है।

प्रकरणसमा जातिका परिचय एक जाति मानी गई है प्रकरणसमाजाति। घट और घटत्व दोनोंकी सदृशतासे, साधर्म्यसे, प्रक्रियाकी सिद्धि होनेके कारण समाजाति बनायी जाती है। जैसे कि अनुमान बनाया गया कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे घटकी तरह। तो इस अनुमानमें अनित्यके साधर्म्यभूत प्रयत्नान्तरिकत्वसे शब्दकी अनित्यताको कोई सिद्ध कर रहा है याने यहाँ वादी शब्दको अनित्य सिद्ध कर रहा है। प्रयत्नके बाद हुआ यह हेतु देकर क्योंकि प्रयत्नके बाद जो होता है वह अनित्य होता है। अनित्यत्वका साधर्म पाया गया है प्रयत्नान्तरीयकत्व तो इस तरह वादी शब्दको अनित्य सिद्ध कर रहा है। लेकिन प्रतिवादी प्रत्यनुमान देकर सामान्यसे साधर्म्य रखनेसे उसकी नित्यताको सिद्ध कर रहा तो यहाँ पक्ष और विपक्षमें प्रक्रिया समान हो गयी। वादी पक्षको अनित्य सिद्ध कर रहा। तो प्रतिवादी जो अनित्य नही है वहाँ नित्यताको सिद्ध कर रहा। प्रक्रिया दोनोंकी बराबर है। जैसे कि वह सिद्ध कर रहा है कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे। तो प्रतिवादी उसके जवाबमें कह रहा है कि घटत्व अनित्य है ऐन्द्रिक होनेसे। तो यहाँ उसीके समान दूसरा अनुमान बनाकर विपक्षमें अर्थात् जो अनित्य नही है, उसमें साध्यको सिद्ध कर देनेकी बात थोपी गई है तो यह प्रकरणसमा जाति हुई। लेकिन प्रक्रियाका उल्लंघन न होनेसे इस तरहका दूषण देना अयुक्त है क्योंकि विरुद्ध होनेसे। प्रतिपक्षकी प्रक्रिया अर्थात् अनुमान रचना सिद्ध होनेपर ही प्रतिषेधका विरोध हो सकता है और प्रतिषेधकी उपपत्तिमें प्रतिपक्षकी प्रक्रियाकी सिद्धि स्वयं हल हो जाती है, तो साध्यकी पहिले ही सिद्धि होनेसे फिर इस हेतुसे क्या सिद्ध किया जा सकता है?

अहेतुसमा जातिका परिचय एक जाति मानी गई है अहेतुसमा जाति। तीनों कालमें हेतुके असिद्ध होनेसे अथवा अनेक विकल्प करके तीन कालके विकल्प उठा करके हेतुको अहेतुक बराबर जता देना इसे अहेतुसमा जाति कहते हैं। जैसे कि यह अनुमान बनाया वादीने कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे। इसी तरहका कुछ भी अनुमान कोई भी वादी उपस्थित करे तो उस साधनमें दूषण तो नजर नही आता, अब उस दूषणको न देखते हुए दूसरा बोल देता है कि क्या साध्यसे पहिले साधन है बतावो या साध्यके बादमें साधन है? या साध्यके साथ साधन है? कोई भी पुरुष अनुमान बनायेगा तो उसमें साध्य और साधन तो होते ही हैं। अब उस संबंधमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह विकल्प उठा दिया जाय कि बतलावो कि तुम्हारा यह साधन साध्यसे पहिले है या साध्य होनेके बादमें है या साध्यके समान कालमें है ? इन तीन विकल्पोंमेंसे यदि पहिली बात मानोगे कि साधन साध्यसे पहिले है तो इसका अर्थ यह हुआ कि साधन तो था, पर साध्य नही, अर्थ नही। जिसको सिद्ध करना चाहते वह कुछ है ही नही। तो जिस कालमें साधन है उस कालमें साध्य नही है। तो जब साधनके समयमें साध्य नही है तो उसे साधन भी कैसे कहा जा सकता ? जैसे अग्नि साध्य है, धूम साधन है तो यह धूम अग्निसे पहिले हो जाय अर्थात् अग्नि तो न हो अग्नि बादमें कभी उत्पन्न हो और धूम उठ गया तो क्या वह धूम अग्निका साधन कहा जा सकता है ? पदार्थके न होनेपर उसमें साधनपना नही आ सकता। यदि दूसरे विकल्पकी बात मानोगे कि साध्यके बाद याने उत्तर कालमें साधन होता है, तो इसका अर्थ है कि साधन नही है और साध्य हो गया, क्योंकि साधन साध्यके बाद मानोगे तो साधन न होनेपर पहिले ही साध्य बना। तो साधनके अभावमें साध्यमें साध्यपना कैसे सम्भव हो सकता है ? यदि कहो कि साध्य और साधन दोनों ही एक साथ होनेमें यह आपत्ति है कि जो एक साथ हुए हों वे स्वतन्त्र प्रसिद्ध कहलाते हैं। जैसे बछड़ेके सिरमें दो सींग एक साथ हैं तो उन दोनों सींगोंको स्वतन्त्र माना जायगा। तो स्वतन्त्र रूपसे प्रसिद्ध हुए साधन साध्यमें साध्य साधन भावका असम्भवपना है, जैसे हिमालय पर्वत और विन्ध्य पर्वत। इनमें स्वतन्त्रता है। कोई इन दोनोंमें एकको साधन बनाये, एकको साध्य, यह क्या हो सकता है ? नही। तो इस प्रकार साध्यके पूर्व साधन माननेपर भी अनुमान नही बन सकता। साध्यके उत्तरमें साधनको माननेपर अनुमान नही बन सकता और साध्यके समान कालमें साधनको माननेपर भी अनुमान नही बन सकता। तो इस तरह वह हेतु अहेतुके बराबर हो गया। यों इसमें हेतुपमता बताकर दूषण देना यह कहलाता है अहेतुसमा जाति। लेकिन यह अहेतुसमा जाति दूषण नही है किन्तु दूषणाभास है। कारण यह है कि हेतुकी प्रत्यक्षसे प्रसिद्धि है और फिर उस प्रत्यक्षसे सिद्ध होने वाले हेतुसे साध्यकी सिद्धि की जाती है। जैसे अनुमान किया गया कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, तो यहाँ जो साधन है धूम वह प्रत्यक्षसे सिद्ध है। अब प्रत्यक्षसे सिद्ध हुए धूमके द्वारा अग्निकी प्रसिद्धि की गई है, तो इसमें जो विकल्प उठाया गया था वह केवल एक वादीका मुँह बन्द करनेके लिए उठाया गया। इसे बुद्धिमान लोग दूषणरूप में स्वीकार नही कर सकते।

अर्थापत्तिसमा जातिका वर्णन—एक अर्थापत्तिसमा जाति है। अर्थापत्ति समा जातिका लक्षण किया गया है कि अर्थापत्तिसे प्रतिपक्षकी सिद्धि हो जानेसे अर्थापत्ति समा जाति होती है। अर्थात् अर्थापत्ति उठाकर दूषण देना, प्रतिकूलता उत्पन्न करना सो अर्थापत्तिसमाजाति है। जैसे कि इस ही अनुमानमें जो कि वादीके द्वारा कहा गया। शब्द अनित्य है, प्रयत्नके बाद होनेसे घटकी तरह। तो यहाँ साधनके कहे जानेपर दूसरा प्रतिवादी कहता है कि यदि प्रयत्नके बाद होनेसे शब्द अनित्य है घट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की तरह तो अर्थापत्तिसे नित्य आकाशका साधर्म्य होनेसे शब्द नित्य हो जायगा। वादीने तो अनुमान दिया है कि प्रयत्नके बाद होता है शब्द इस कारण शब्द अनित्य है लेकिन प्रतिवादी इसी अनुमानकी तुलनामें एक दूसरा अनुमान बनाकर अर्थापत्ति उठाकर कहता है कि लो शब्द नित्य है स्पर्शवान होनेसे । शब्द स्पर्शमें नहीं कहा ना। । तो जैसे आकाश अस्पर्शवान है, उसका स्पर्श नहीं होता और वह नित्य है तो अस्पर्शवत्ता जैसे नित्य आकाशमें देखी गई है और साथ ही प्रतिवादीके सिद्धान्तमें शब्द आकाशका गुण है। तो जैसे आकाश अस्पर्शवान है इसी प्रकार शब्द भी अस्पर्शवान है। लोकदृष्टिमें भी उसका स्पर्श ज्यादह समझमें नहीं आता। यों उसके मुकाबलेमें स्पर्शवत्त्व साधन बनाकर शब्दमें नित्यपना अर्थात् वादीके द्वारा कहे गए साध्य को विपरीतपना सिद्ध करनेकी बात लाद देना सो अर्थापत्तिसमजाति कहलाती है।

अर्थापत्तिसमा जातिकी दूषणाभासता—यह अर्थापत्तिसमा जाति दूषण नहीं है किन्तु दूषणाभास है। इसका कारण यह है कि इसके अनित्य सुख आदिकके साथ अनैकान्तिक दोष है। प्रतिवादीने जो अनुमान कहा है अर्थापत्ति जाति उठाकर उसमें अनैकान्तिक दोष है अर्थात् यहां अनित्य सुख आदिकके साथ भी अनेकांतिक दोष है। अनेकांतिकता होनेसे अर्थात् अस्पर्शवान यह जो हेतु जातिवादीके द्वारा कहा गया है वह हेतु अनेकांतिक दोषसे दूषित है। जो अस्पर्शवान है वह अनित्य होता है। अब प्रतिवादीके सिद्धान्तमें यह बात आयी थी तो घटाओ इसको। जिस जिसमें स्पर्श नहीं होता वह वह सब नित्य होता है। तो बतलावो सुखका स्पर्श भी होता है क्या ? सुख ठण्डा है, गर्म रूखा, चिकना आदि है क्या ? तो सुख भी अस्पर्शवान है तो हेतु तो सुखमें आ गया पर सुख अनित्य है। इसी प्रकार अन्य भी भाव हैं क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक। ये सभी अस्पर्शवान हैं । इनमें स्पर्श तो नहीं है लेकिन ये नित्य नहीं है, अनित्य हैं। तो प्रतिवादीने तो मुकाबलेमें अर्थापत्ति पेश करके अर्थापत्तिसमा जाति बनाया है उसका कहना ही गलत है। वह अनेकांतिक दोषसे दूषित है। तो अनैकान्तिक दोषसे दूषित होनेसे दूषित अनुमान किसी अनुमान का बाधक नहीं बन सकता है। यों अर्थापत्तिसमा जातिके द्वारा जो यह प्रतिवादी, जातिवादी अपनी जीत और परकी हारको घोषित करना चाहता है, यह उसका मूढ़तापूर्ण प्रयास है, क्योंकि सभामें बैठे हुए विद्वान लोग समर्थ वचनसे ही जीत और असमर्थ वचनसे ही हार मानते हैं। यहाँ वादीका तो समर्थ वचन था और प्रतिवादीने जो अर्थापत्ति उठाकर दूषण दिया है वह उसका असमर्थ वचन है, क्योंकि उसके अनुमानमें स्वयं अनेक दूषण आ रहे हैं, इस कारण अर्थापत्तिसमा जातिसे जीत हारकी व्यवस्था नहीं बन सकती।

अविशेषसमा जातिका वर्णन—अब अविशेषसमा जातिका वर्णन करते हैं। एक धर्मकी उपपत्ति होनेसे अविशेशरूपमें समस्त अविशेषोंका प्रसंग होनेसे सत्त्वकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उपपत्तिपना बतानेसे अविशेषसमा जाति होती है। जो उदाहरण दिया जायगा और जिसका पक्ष बनाया जायगा उन ही दोनोंमें एक धर्म बताया जाता है जिससे कि साध्य की सिद्धि की जाती है। अब जिसे एक धर्म बता रहे हैं उसके कारण उसमें समानता है तो अन्य भी कोई ऐसे धर्म बताकर जिसका कि पक्ष और दृष्टान्तमें समानता हो उसको पेशकर अन्य किस ही साध्यको सिद्ध कर बैठना यह अविशेषसमा जाति कहलाती है। जैसे इस ही अनुमानमें कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे, इसमें जो साधन बताया गया है कि प्रयत्नके बाद होनेसे तो उस साधनके बोलनेपर प्रतिपक्षी अथवा जातिवादी कहता है, वादीके कथनको दूषित करनेका यत्न करता है कि प्रयत्न के बाद होना यह हुआ एक धर्म जिसे कि शब्दमें भी घटाया जा रहा और दृष्टान्त घट में भी घटाया जा हरा है। तो उस एक धर्मकी उपपत्ति है इसमें और इस कारण अनित्यपनेका अविशेष है अर्थात् अनित्यपना मान लिया गया है, तो अब एक और ऐसा धर्म देखिये कि जो दोनोंमें पाया जाता, जैसे सत्त्व धर्म। यों कह दीजिये कि शब्द अनित्य है सत्त्व होनेसे, क्योंकि एक धर्म दोनोंमें समान रूपसे पाया जाय उसके द्वारा साध्य सिद्ध किया जा रहा है तो यहाँ अब सत्त्व हेतु कह देंगे जो दोनोंमें पाया जा रहा है। तो सत्त्व धर्म कहकर फिर समस्त पदार्थोंमें अनित्यपनेकी अविशेषता आ जायगी, और इस तरह फिर यह एक दूषण आता है सत्त्व होनेके कारण। सभी पदार्थ अनित्य कहाँ हैं?

अविशेषसमा जातिकी दूषणाभासता—अविशेषसमा जातिमें दूषणाभासपना है। वस्तुतः दूषण नहीं है क्योंकि उस प्रकार साधना करना असंभव है। जैसे प्रयत्नके बाद होना यह साधन धर्म अनित्यत्वरूप साध्यको शब्दमें सिद्ध करता है इसी प्रकार सर्व अर्थोंमें एक सत्त्व धर्म बताकर साध्यके विरुद्ध अर्थात् विपक्ष याने नित्य आकाश आदिकमें भी सत्त्वके होनेपर भी विपरीतकी ही उपलब्धि है याने प्रकृतमें जो साध्य बताया गया है अनित्य होना उससे विपरीत है नित्य याने सत्त्व धर्म अनित्य पदार्थोंमें भी संगत होता है और नित्यमें भी संगत होता है। तो इस तरह यह अनैकान्तिक हेत्वाभास हो गया। और उस ही हेत्वाभासकी बात कह करके इस साधनको दूषित कर दिया जायगा, जो कि प्रतिवादीने जाति नामसे दूषण रूपमें उपस्थित किया तब यह दूषण तो न रहा, यह दूषणाभास हो गया।

उपपत्तिसमा जातिका परिचय—एक जाति है उपपत्तिसमा जाति। दोनों कारणोंकी उपपत्ति होनेसे उपपत्तिसमा जाति बनती है। जैसे इसी अनुमानमें कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके बाद होनेसे तो यहाँ "प्रयत्नके बाद होनेसे" इस साधनके प्रयुक्त कर दिये जानेपर प्रतिपक्षी अथवा जातिवादी कहता है कि यदि अनित्यपना होनेमें कारण प्रयत्नानन्तरीयकपना है शब्दमें और इसी कारणसे ये शब्द अनित्य हैं तो देखिये कि नित्यत्वका भी कारण अस्पर्शवत्त्वपना है इस कारण नित्य भी हो जाय। अर्थात् शब्द

http://sahjanandvarnishastra.org/

को प्रयत्नानन्तरीयकपना बोलकर अनित्य सिद्ध किया जा रहा है वादीके द्वारा तो प्रतिवादी यहाँ दूषित करता है उपपत्तिसमा जाति बनाकर कि जैसे प्रयत्नानन्तरीयकत्व होनेसे शब्द अनित्य है तो शब्द स्पर्शवान नहीं है तो अस्पर्शवान होनेसे जैसे आकाश अनित्य है तो अस्पर्शवान होनेसे शब्द नित्य हो जायगा। अब यहाँ दो साध्योंके दो कारण समानरूपसे कहे गए। सो नित्यपना और अनित्यपना दोनोंके कारणके हेतुवोंमें साधनोंमें उपपत्ति बताकर दूषित कर देना इसको उपपत्तिसमा जाति कहते हैं, लेकिन यह दूषणाभास है। ऐसा बोलने वालेने स्वयं ही अनित्यपनेका कारण प्रयत्नानन्तरीयकपना मान ही लिया है। और, जब प्रयत्नानन्तरीयकपना शब्दमें मान लिया गया तब फिर अन्य बात कैसे उत्पन्न हो जायगी ? जब एक बात प्रथम सिद्ध हो गयी तब उपपत्तिसमा जातिके व्याध्यमसे उसमें अब साध्यसे विपरीत साध्य सिद्ध करना यह सम्भव नहीं होता।

उपलब्धिसमा जातिका परिचय—एक जातिका नाम है उपलब्धिसमा जाति। विशिष्ट कारणका अभाव होनेपर भी साध्यके उपलम्भ होनेसे उपलब्धिसमा जाति बनती है अर्थात् साध्यधर्मकी सिद्धिका कारणभूत कुछ न बननेपर भी और साध्य धर्मकी उपलब्धिसे वहां वादीको दूषित करनेको ही उपलब्धिसमा जाति कहते हैं। जैसे इसी अनुमानमें कि शब्द अनित्य है प्रयत्नानन्तरीयक होनेसे। तो यहां इस साधनके बोलनेपर अब प्रतिवादी अथवा जातिवादी दूषण देता है कि देखिये जब वृक्षकी शाखा आदिक टूटती है तो शाखा आदिक भंगसे उत्पन्न हुए शब्दमें प्रयत्नानन्तरीयपना तो नहीं है और वह शब्द अनित्य है तो यह कहना कि जो प्रयत्नानन्तरीयक होता है वह अनित्य होता है यह अप्रतिबद्ध है, देखो शाखा आदिकके भंगसे उत्पन्न होने वाला शब्द अनित्य तो है पर प्रयत्नानन्तरीयक नहीं है। किसी पुरुषके प्रवचनके अनन्तर उत्पन्न हुआ नहीं है। इस तरह योग सिद्धान्तमें उपलब्धिसमा जाति बतायी गई है लेकिन वह दूषण नहीं है, दूषणाभास है, क्योंकि जो बात इस प्रकृतमें सिद्ध की जा रही है, दूषण देते हुए प्रतिपक्षीने जो बात अनुमानमें साध्य साधनकी कही है। तो उस साध्यके साथ साधनका अविनाभाव नहीं है। साधनके बिना साध्य नहीं होता, यह नियम नहीं है। किन्तु साध्यके अभावमें साधनका अभाव होता है ऐसा इसमें नियम उपपन्न होता है। जैसे कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, तो यहां यह नियम नहीं बनाया जा सकता है कि जहां जहाँ अग्नि होती वहाँ धूम अवश्य होता। लेकिन यह नियम बनाया जायगा कि अग्नि यदि नहीं है तो धूमका अभाव है। तो साध्यके अभावमें साधनके अभावके होनेका नियम है। किन्तु, जहां जहां साध्य हो वहाँ साधन होना ही चाहिए ऐसा इसमें नियम नहीं है। और दूसरी बात यह है कि अनित्यत्वमें 'प्रत्यत्नानन्तरीयकपना ही गमक नहीं है, किन्तु उत्पत्तिमत्त्व आदि अनेक साधन भी अनित्यत्वके गमक हैं। इस कारण उपपत्तिसमा जातिसे वादीकी हार करना और जातिवादीकी जीत घोषित करना यह सम्भव नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अनुपलब्धिसमा जातिका परिचय—एक अनुपलब्धि समा जाति भी है कि पक्ष आदिककी अनुपलब्धिके अनुपलम्भसे पक्षादिक अभावके अभावकी सिद्धिमें उससे विपरीतकी उपपत्ति बताना यह अनुपलब्धिसमा जाति है। जैसे एक अनुमान बनाया कि उच्चारणसे पूर्व शब्द अविद्यमान है अनुपलब्धि होनेसे जैसे कि उत्पत्तिके पहिले घट आदिक अविद्यमान हैं। उच्चारणसे पहिले विद्यमान शब्दकी अनुपलब्धि नहीं है। ऐसा नही कह सकते क्योंकि शब्दके आवरणकी अनुपलब्धि होनेसे । जैसे घटपर आवरण डाल दिया, अब वहां घटकी अनुपलब्धि हो रही है। तो यह बात तब ही कह सकते जब घटके आवरणकी उपलब्धि होती रहे, इसी प्रकार आवरणसे पहिले शब्दकी अनुपलब्धि नही बताई जा सकती। अगर अनुपलब्धि बतायें तो आवरक बताना पड़ेगा सो आवरककी अनुपलब्धि होनेसे शब्दकी अनुपलब्धि नही कही जा सकती। जैसे उत्पत्तिसे पहिले घट आदिककी अनुपलब्धि नहीं कही जा सक्ती, क्योंकि आवरणकी अनुपलब्धि है। परन्तु जिसको देखनेसे पहिले विद्यमानकी अनुपलब्धि हो उसके ही आवरणकी अनुपलब्धि नही होती। जैसे भूमिसे आवृत्त हुआ जल है तो कहेंगे कि जलकी अनुपलब्धि है। क्योंकि जलका आवरण भूमि पायी जा रही है। तो ऐसे ही शब्दके सुननेसे पहिले शब्दके आवरणकी अनुपलब्धि है। इस तरह वादीने अनुमान दिया, उसपर प्रतिवादी. जातिवादी कहता है उस शब्दकी अनुपलब्धिका अनुपलम्भ होनेसे शब्दकी अनुपलब्धिके अभावकी सिद्धि किए जानेपर शब्दके अभावका विपरीतपना होनेसे भावकी उपपति हो जायगी। यों यह अनुपलब्धिसमाजाति बन जायगा। लेकिन, यह अनुपलब्धिसमा दूषण नहीं है, यह दूषणाभास है क्योंकि अनुपलब्धिकी भी अनुपलब्धि स्वरूपसे उपलब्धि पायी जाती है अर्थात् अनुपलब्धि अनुपलब्धित्व रूपसे तो उपलब्ध है। सो जैसे कि उपलब्धि उपलब्धिका विषय है इसी प्रकार अनुपलब्धि अनुपलब्धि रूपसे उपलब्धिका विषय है। यदि अनुपलब्धि रूपमें यदि अनुपलब्धि उपलब्धिका विषय न बने तो ऐसा सम्वेदन फिर कैसे बन सकता है कि मेरेको घटकी उपलब्धि है परन्तु उसकी अनुपलब्धि नहीं है, यह सम्वेदन यह सिद्ध करता है उपलब्धि अनुपलब्धिका विषय है और अनुपलब्धि भी अनुपलब्धि रूपसे उपलब्धिका विषय है। इससे अनुपलब्धिसमाजाति दूषणके लिए नहीं हो सकती है।

अनित्यसमाजातिका परिचय—२२ वीं जाति है अनित्यसमाजाति। इसका लक्षण न्याय सूत्रमें इस प्रकार बताया है कि साधर्म्य होनेसे समान धर्मकी उपपत्ति होनेके कारण समस्त पदार्थोंमें अनित्यत्वका प्रसंग होना इसे अनित्यसमा जाति कहते हैं। जैसे अनुमान किया कि शब्द अनित्य है कृतकपना होनेसे घटकी तरह । वादीके द्वारा इस प्रकार अनुमान कहा जानेपर प्रतिवादी अर्थात् जातिवादी यहाँ दूषण देता है कि यदि घटके साथ शब्दका साधर्म्य कृतकत्व आदिकके द्वारा अनित्यपनेको सिद्ध करता है तो समस्त वस्तुएँ अनित्य हो जायेंगी, क्योंकि अनित्य घट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिकके साथ अथवा अनित्य धर्मके साथ सत्त्व धर्म भी रहता है और उस सत्त्वधर्म को मुख्य करके हेतु करके फिर साधर्म्य मात्रसे अर्थात् साध्यका सर्वत्र अविशेष है अतएव सभी वस्तुएँ अनित्य बन जायेंगी यों अनित्यसमाजाति कही गई है लेकिन इस अनित्य समाजातिमें दूषणाभासपना है क्योंकि प्रतिसेधकी असिद्धिका प्रसंग आता है अर्थात् प्रतिपक्षकी असिद्धिके प्रसंग आते हैं। यदि यह अनित्यसमाजाति दूषणाभास न हो तो प्रतिपक्षकी भी असिद्धि बन जायगी अर्थात् वादीके मतव्यका खण्डन करनेके लिए प्रतिवादीने जो कुछ भी उत्तर दिया है। सिद्ध करना चाहा है उसकी भी असिद्धि हो जायगी ! देखिये इस प्रसंगमें प्रतिसेध्य तो बनाया जा रहा है पक्षको और प्रतिसेधक हो रहा प्रतिपक्ष और ऐसा होता ही है। जिसने पहिले बोला वह तो उसका पक्ष हुआ। अब उसपर कोई बोले असिद्ध करनेके लिए तो वह प्रतिपक्ष प्रतिषेधक हुआ। अब यहां देखिये कि पक्ष और प्रतिपक्ष दोनोंमें सदृशता है एक प्रतिज्ञा योगके सम्बन्धसे। प्रतिज्ञा आदिकका विधान जैसे पक्षमें किया गया है उसी तरह प्रतिज्ञा आदिकका विधान प्रतिपक्षमें भी किया गया है। तो प्रतिज्ञा आदिकके लगाव बिना पक्ष और प्रतिपक्षकी मुद्रा ही नहीं बनती। तब प्रतिज्ञा आदिकके सम्बन्ध होने पर जैसे पक्षकी असिद्धि की गई है इसी प्रकार प्रतिपक्षकी भी असिद्धि हो जायगी। यदि कहो कि साधर्म्य होनेपर भी पक्ष और प्रतिपक्षमेंसे पक्षकी ही असिद्धि होगी, प्रतिपक्षकी न होगी तो उत्तरमें कहते है कि इसी प्रकार यह भी तो कहा जा सकता है कि घटके साथ साधर्म्य होनेसे कृतकत्व धर्म द्वारा शब्दमें ही अनित्यताकी "सिद्धि होगी। समस्त पदार्थोंमें केवल सत्त्वके साधर्म्यमात्रसे अनित्यताकी सिद्धि न होगी अर्थात् जैसे शब्द कृतक है और सत् भी है तो जैसे शब्दमें कृतकत्व हेतु पाया जा रहा है सो सत्त्व भी तो पाया जा रहा। अब जैसे कृतकत्वके द्वारा अनित्यपनेकी सिद्धि की जा रही है, उसी तरह सत्त्वके द्वारा भी अनित्यपनेकी सिद्धि कोई करे तो वह युक्त नहीं होगा। इस प्रकार जब कि सत्त्वके द्वारा अनित्यकी सिद्धि करेंगे तो सत्त्व तो सभी पदार्थोंमें है। फिर तो सभी पदार्थ अनित्य बन जायेंगे ऐसी सदृशता देकर सब पदार्थोंमें अनित्यताकी सिद्धि नहीं हो सकती।

नित्यसमा जातिका परिचय २३ वी जाति है नित्यसमाजाति। शब्दको अनित्य कहनेपर नित्यत्वका दूषण देना नित्यसमा जाति है। अर्थात् पक्षका जो अनित्यत्व धर्म है उस अनित्यत्व धर्मको नित्यत्वके अपादन करनेसे उसमें जो पक्षको दूषित कर दिया जाता है वह नित्यसमाजाति कहलाती है। जैसे कहा गया कि शब्द अनित्य है तो यहाँ शब्दको अनित्य कहा जानेपर प्रतिवादी यह दूषण देता है कि शब्दका आश्रयभूत वह अनित्यत्व धर्म अर्थात् शब्दमें जो अनित्यत्व धर्मकी सिद्धिकी जा रही है सो शब्दमें रहने वाला वह अनित्यत्व धर्म क्या नित्य है या अनित्य ? यदि कहो कि नित्य है तो शब्द भी नित्य हो जायगा। अन्यथा इस नित्य अनित्यत्वका आधार शब्द नहीं बन सकता। यदि कहो कि शब्दमें रहने वाला अनित्यत्व धर्म अनित्य है तो भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यही दोष आता है कि अनित्यत्वका अनित्य मान लेनेपर अर्थ क्या हुआ कि शब्द नित्य हो गया। शब्दमें रहने वाला अनित्यत्व धर्म यदि अनित्य है याने सदा नही रहता है तो न रहा अनित्यत्व सदा, इसका अर्थ यह हो बैठेगा कि शब्द नित्य हो गया। इस तरह कहकर वादीके अनुमानको दूषित कर देना यह नित्यसमा जाति कहलाती है। किन्तु इसमें भी दूषणाभासपना है क्योंकि प्रकृत साधनका यह अविनाभावी नहीं है। उत्पन्न हुए पदार्थके प्रध्वंसको अनित्य कहा करते हैं और उस अनित्यका परिज्ञान करनेपर अनित्यत्वको अंगीकार करनेपर फिर उसके प्रतिषेधका विरोध है। अब निषेध नहीं किया जा सकता और यदि स्वयं शब्दमें अनित्यत्वको अंगीकार न किया तब फिर प्रतिषेध ही किसका किया जायगा? यहां प्रतिषेध किया जा रहा था अनित्यत्वका और अनित्यत्वको अंगीकार नहीं किया तो प्रतिषेध निराश्रय हो गया इस कारण नित्यत्वका दूषण देनेसे नित्यत्वका आपादन करनेसे शब्दमें अनित्यता निराकृत नही की जा सकती।

कार्यसमा जातिका परिचय -- २४ वीं जाति है कार्यसमा जाति। इस जातिका न्याय सूत्रमें यह लक्षण किया गया है कि प्रयत्नसे अनेक कार्य होते हैं इस कारण कार्यसमा जाति हो जाया करती है। जैसे वादीने अनुमान बनाया कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके अनन्तर होनेसे, ऐसा कहा जानेपर प्रतिवादी दूषण देता है कि प्रयत्नके अनन्तर घट आदिकोंका उत्पत्तिसे पहिले जो कि असत् हैं इनका आत्मलाभ भी प्रतीत होता है और आवरण करने वाले पदार्थोंके हटा देनेसे पहिले सत् रहने वाले पदार्थोंकी अभिव्यक्ति भी प्रतीत होती है, अर्थात् वादीने जो अनुमान किया है कि शब्द अनित्य है और उसमें हेतु दिया है कि प्रयत्नके बाद होनेसे, तो प्रयत्नके बाद तो दोनों ही बातें हो सकती हैं। पदार्थोंकी उत्पत्ति हो जाय अथवा पदार्थोंकी अभिव्यक्ति हो जाय, जैसे घट रखे हैं और उनपर कपड़ेका पर्दा डाल दिया। अब पर्दा हटानेका प्रयत्न किया पुरुषने तो उस प्रयत्नके बाद हुआ क्या? घटोंकी अभिव्यक्ति। और कुम्हारने मिट्टी सानकर चाकार रखकर घड़ा बनाना शुरू किया तो घड़ा बनेगा, वह भी प्रयत्न के बाद बनेगा। तो यहाँ प्रयत्नसे क्या हुआ? घटकी उत्पत्ति। तो प्रयत्नके द्वारा दोनों ही प्रकारके कार्य हो जाते हैं -- घटकी उत्पत्ति भी हो सकती है और घटकी अभिव्यक्ति भी हो सकती है। प्रयत्नके बाद पहिले सत् रहने वाले पदार्थोंकी तो अभिव्यक्ति हुई है और पहिले न रहने वाले पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई है। तब प्रयत्नानन्तरीयकपना इस हेतुके अब दोनों साध्य हो गए -- उत्पत्ति भी साध्य है और अभिव्यक्ति भी। तो जहाँ अभिव्यक्ति होती है वहाँ तो अनित्यता नही मानी जा सकती। जहाँ उत्पत्ति होती वहाँ ही अनित्यता मानी जा सकती है। तो अब यहां शब्दको अनित्य कैसे सिद्ध किया जा सकता है? प्रयत्नानन्तरीयकपना अभिव्यक्ति भी सिद्ध करता है और अभिव्यक्ति सिद्ध करनेके कारण नित्यत्वको सिद्ध करता है। इस तरह प्रयत्नके अनेक कार्य बताकर प्रकृत कार्यके विरुद्ध कार्य उपस्थित करके उस हेतुका अन्य साध्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बता देना यह कार्यसमा जाति कहलाती है। अब परखिये इस नित्यसमा जातिमें भी दूषणाभासपना है, क्योंकि प्रकृतसाधनका यह अविनाभावी नहीं है। देखिये शब्द जो कि पहिले असत् है उसको अब स्वरूप लाभ हुआ याने शब्द बना तो यही जन्म कहलाता है और यही प्रयत्नके बाद हुता है, क्योंकि उच्चारणसे पहिले अनुपलब्धिका निमित्तभूत आवारक पदार्थके अभावमें भी अनुपलब्धि होनेसे सत्त्व असम्भव है अतएव वादीके द्वारा कहे गए इस अनुमानमें कि शब्द अनित्य है प्रयत्नके अनन्तर होनेसे इसमें जो प्रतिवादीने कार्यसमा जाति बताकर दूषित किया है वह उसका दूषण सही नहीं है, किन्तु दूषणाभास है।

जातिमात्रसे जय पराजयकी व्यवस्थाकी अशक्यता—उक्त प्रकारसे जो २४ प्रकारकी जातियाँ बताकर योग सिद्धान्तने जीत और हारकी व्यवस्था बनायी सो यों जीत और हारकी व्यवस्था बनायी सो यों जीत हारकी व्यवस्था तो बन ही नहीं पाती। विद्वद्जन उन सबके बीच समझ लेते हैं कि यह जबरदस्तीका उत्तर है और वह समर्थ वचन है। जिस जिस जगह हेतुमें दूषण आया, अनुमान दूषित हुआ उन उन सब जातियोंमें साधनाभास, पक्षाभास आदिक दोष जो कि पहिले बताये गए यहां घटित होते हैं तब अन्य अन्य शब्दोंमें योगसिद्धान्त उनको जातिका रूप देता है। सो उन जातियोंके कथनसे जय पराजयकी व्यवस्था भी नहीं बनती, और पहिले तो यही बात है कि योग सिद्धान्तमें कल्पित जातियोंका उक्त सामान्य और विशेष स्वरूप का बनाना अयुक्त है, क्योंकि इस तरहसे लक्षण बनानेपर जो साधनाभास है हेत्वाभास हैं उनमें भी साधर्म्य आदिकके द्वारा बताया गया दूषण होनेके कारण उन साधनाभासोंमें भी जातित्वका प्रसंग आ जायगा फिर वे साधनाभास भी न कहला सकेंगे। उनमें साधनाभासता न रहेगी। इसपर प्रतिवादी कहता है कि यह बात तो इष्ट ही है, उन साधनाभासोंमें यदि जातित्वका प्रसंग आता है तो आने दो, इसमें हम कोई दोष नहीं समझते। जैसे कि मिथ्या साधनके प्रयोग करनेपर जो जातियोंका प्रयोग किया गया है, जातिवादीने जो जातिका प्रयोग किया है सो या तो उसने साधनके दोषका परिज्ञान न होनेसे किया है या फिर प्रसंगके छलसे उसका दोष बनानेके लिए किया है। अब उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी असंगत है, क्योंकि योगसिद्धान्तमें हुए उद्योतकर ऋषिने भी साधनाभासके प्रयोगमें जातिके प्रयोगका निराकरण किया है अर्थात् साधनाभासमें जातिका स्वरूप लगाकर साधनाभासको तो गौण दोष कह दिया जाय और जाति दोषको मुख्य बना दिया जाय, ऐसी बातको उद्योतकरने भी पसंद नहीं किया है।

साधनाभासको जानकर जातिप्रयोग करनेकी निरर्थकता—अच्छा, यह बतलावो कि जातिवादी इस समय क्या यह समझता है कि यह साधनाभास है या सा समझता नहीं है। यदि वह जानता है कि यह साधनाभास है तो जब ही इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वादीके साधनाभासपना रूप हेतु दोष इस प्रतिवादीने जाना तब एक साधनाभास ही बोलना चाहिए, जाति न बोलना चाहिए, क्योंकि वहाँ जातिवादके प्रयोगके प्रयोजनका अभाव है। जाति बोलकर क्या करना चाहिए था ? अनुमानको गलत बताना चाहिए था, लेकिन जब पहिले इस प्रतिवादीने साधनाभास जान लिया तो साधनाभासके ही ही द्वारा वह अनुमान गलत साबित हो गया, अब अन्य क्या प्रयोजन रहा ? जिससे कि साधनाभास जानकर भी अब यह जातिदोषको बतानेका प्रयत्न करे और यह भी बात नहीं बनती कि प्रसंगके ब्याजसे दोषको दिखानेके लिए ही जाति कही गई। क्योंकि फिर इसमें दोषका संशय बन जायगा।

साधनाभासवादीके प्रति जातिप्रयोग करनेसे भी जातिवादीके पराजयका निर्णय -यदि प्रतिवादीके द्वारा जातिके प्रयोग किए जानेपर साधनाभासवादी अर्थात् पूर्वपक्षवादी अपने द्वारा कहे गए साधनमें दोषको देखता हुआ अर्थात् वह वादी साधनको तो कह गया, पर उसे यह भी विदित है कि इस साधनमें यह दोष है। तो यों अपने कहे गए साधनमें दोषको देखता हुआ सभामें इस तरह बोल दे कि मेरे द्वारा कहे गए साधनमें दोष तो यह है, इसे इस प्रतिवादीने बताया नहीं और जाति का प्रयोग करने लगा. इस प्रकार यदि पूर्वपक्षवादी यों कहदे तो फिर जातिवादी की जीतका प्रयोजन तो अब न रहा. क्योंकि ऐसा कहनेमें वादी प्रतिवादी दोनोंका ही अज्ञान सिद्ध हो जाता है। वादीने चूक करके साधनाभास बोल दिया, तो सभामें बैठे हुए विद्वत्जन उसका अज्ञान तो जान ही रहे हैं और फिर प्रतिवादीने उसको चुप करनेके लिए जातिका प्रयोग किया और उस जातिकी दूषणाभासका अथवा जातिका ही एक प्रयोग करने वाला रहा। दोषको न समझ सका इससे पूर्वपक्षवादी स्वयं ही कह डाले तब दोनोंका अज्ञान सभासदोंकी बुद्धिमें सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह भी नहीं है कि प्रतिवादीकी हार न होती तो बराबरी तो रहती। सो बराबरी भी नहीं रहती क्योंकि जहां पूर्णतया जय सम्भव नहीं है। वहाँ बराबरी मानी जा सकती है। योगोंके सिद्धान्तमें कहा भी है कि जहाँ बिल्कुल हार होती हो वहां संदेह ही डाल दे तो वह भी अच्छी बात है। पूरी हार होनेसे हारका सन्देह बन जाय तो वह भलाई है। तो इस तरह सन्देह तक भी नहीं बनता, समता भी नहीं बनती। वहां तो सब को जातिवादीकी हारको परिज्ञान है। यदि वह प्रतिपक्षी जातिका प्रयोग भी नहीं करता तो भी उसकी पराजय सबके लिये सिद्ध थी, जैसे कि पूर्वपक्षवादीने साधनाभास बोला याने मिथ्या हेतु बोल दिया। अब वादीके मिथ्या भाषणके बाद प्रतिवादी चुपचाप रह गया तो उसमें भी अज्ञानकी प्रसिद्धि है। और, कदाचित् प्रतिपक्षी कुछ कह दे, जातिका प्रयोग करदे तो उसमें भी दोनोंके अज्ञानकी सिद्धि है। सभामें बैठे हुए विद्वान लोग दोनोंको समान दृष्टिसे देखते हैं अर्थात् अज्ञानरूपसे देखते हैं, तब जाति का प्रयोग करना निरर्थक रहा ना। साधनाभासको बताते तब तो उसमें उसका महत्त्व था। पूर्वपक्षवादीने कोई बात कही और उसमें जो दलील दी, हेतु कहा वह था मिथ्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यदि दूसरा याने प्रतिपक्षी प्रतिवादी वादीके कहे गए साधनमें ही दूषण बतादे कि इसका कहना यों हेत्वाभास है तब तो प्रतिवादीकी जीत कहला सकती है लेकिन साधनाभास तो बताया नही, और जातिका प्रयोग करने लगा तो इसका अर्थ तो यों होता है कि जैसे किसीको उत्तर देते तो बने नही और उत्तर न दे सकनेके कारण कुछ यहाँ वहाँकी अथवा गाली गलौज जैसी बात कह डाले तो इससे विद्वान उस प्रतिपक्षी की जीत तो न मान लेंगे। वे तो समझेंगे कि यह खीज गया है। और खीज करके अनाप सनाप बोलता है।

स्वयं साधनाभासताका उद्भावन न करने वाले साधनाभासवादीके जातिप्रयोग करनेसे जातिवादीकी पराजयका निर्णय – अब और भी देखिये ! जिस समय साधनाभासवादी अपने साधनमें जो दोष है उसको ढाककर और दूसरेके द्वारा कही गई जातिका उद्भावन करता है, जातिको ही खोल देता है तो उस समय भी जातिवादीकी जीत अथवा समता नही हो पा रही है। वहाँ भी जातिवादीकी पराजय ही सम्भव है। उक्त कथनका निष्कर्ष यह है कि वादीने कोई बात कही और उसमें जो साधन दिया वह था झूठा, तो साधनमें जो गलती है उस साधनाभासपनेको यदि प्रतिवादी बता देता है तब तो प्रतिवादीकी जीत है और वादीकी हार है लेकिन वादीके द्वारा कहे गए साधनाभासमें साधनाभासताकी बात तो कहे नही कोई और छल व्याज करके जातिका प्रयोग करे तो सभामें बैठे हुए सभाजन दोनोंका ही अज्ञान समझेंगे। तो इस तरह भी जातिवादीकी जीत नही, न समता है। तब यह कहना कि प्रसंगके व्याजसे दोषको दिखानेके लिए ही जातिका प्रयोग है, सो वह अयुक्त है क्योंकि इससे उनके प्रयोजनकी सिद्धि नही हुई बल्कि दोषमें संशय हो, गया।

साधनाभासताका अपरिज्ञान होनेपर भी जातिप्रयोगमें जातिवादीकी पराजय—अब यदि यह कहो कि प्रतिवादी यह साधनाभास है यह न जानकर, यह न बताकर जातिका प्रयोग करता है तो इसके उत्तरमें भी सुनो ! यह साधनाभास है, ऐसा न जानकर, ऐसा न करकर यदि प्रतिवादी जातिका प्रयोग करता है तो भी उस का परिश्रम व्यर्थ है। जातिका प्रयोग करना निष्फल है क्योंकि इसमें भी जातिवादी की हार ही है, जीत नही है। देखिये ! वादीने समीचीन साधनका प्रयोग किया तो वादीके द्वारा सही साधनका प्रयोग किया जाना प्रतिवादीको हारके लिए ही है। जातिवादी यहाँ शंकाके रूपमें रखता है कि भाई ! चुप हो जानेपर तो लोग जान ही जाते कि यह हार गया। तो उस चुप हो जानेसे भला तो यह है कि चाहे झूठा भी उत्तर बने, पर जातिका प्रयोग करदे और झूठा भी उत्तर देकर उस वादीको निरुत्तर करदे तो इसमें इतना तो मुनाफा हो गया कि जो बिल्कुल हार हो रही थी, लोग समझ रहे थे कि यह कुछ भी नही जानता, यह तो पूरा हार गया, तो उससे तो यह भला है कि कमसे कम सन्देहकी बात तो आ गई। अब जातिवादीके इस प्रलापको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुनकर कमसे कम सभासद यह तो जान लेंगे, सन्देह कर लेंगे कि किसकी जीत हुई और किसकी हार हुई। इस प्रतिवादीकी बिल्कुल हार हुई तो नहीं दिखती, यह तो दनादन बोलता चला जा रहा है इस कारण जयके लिए जातिका प्रयोग कर देना कुछ सफल होता ही है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात कहना भी असंगत है। जातिका प्रयोग कर देनेपर भी सर्वथा पराजय जैसा होनेको था वह अब भी हार हैं। क्योंकि जिस प्रकार सभामें बैठे हुए विद्वत्जनोंने यह देखकर कि वादीने जो कुछ अपना पक्ष रखा उसपर यह प्रतिवादी उत्तरपक्षवादी चुप रह गया तो मालूम होता है कि इस प्रतिवादीको उत्तरका ज्ञान नही है। तो उन सभासदोंने, उन निर्णायकोंने उत्तरका अपरिज्ञान समझनेके कारण प्रतिपक्षीकी पराजय निर्णीत करली है उसी प्रकार अगर यह प्रतिपक्षी जातिका प्रयोग भी करदे तो क्या विद्वत्जन यह नही जानते कि इससे उत्तर देते बना नही और यहां वहां की बात ढूंढ़कर इसके चुप करनेके लिए जातिका प्रयोग कर रहा है। तो जिस प्रकार चुप रह जानेपर प्रतिवादीकी हार सभासदोंके द्वारा करनेपर भी प्रतिवादीकी हार सभासदोंके द्वारा जान ली जाती है, क्योंकि सभासद दोनों स्थितियोंमें समझ रहे है कि इस प्रतिवादीको उत्तर का परिज्ञान नहीं हुआ और जो जातिका प्रयोग किया है वह भी तो असत्य उत्तर है तो झूठा उत्तर क्या उत्तर कहलाता है वह तो अनुत्तरकी ही तरह है। तो प्रतिपक्षी यदि चुप रहे तो भी हार है और जातिका प्रयोग करे तब भी उसकी हार है, जातिका प्रयोग करके जय कोई प्राप्त नही कर सकता।

पूर्वपक्षवादीकी उत्तरानुद्भावनमें हारकी आशंका व उसका समाधान

अब यहाँ शंकाकार कहता है कि वादीने कोई अपना मंतव्य रखा और साधन भी उपस्थित किया। वह सम्यक् हो या मिथ्या हो यह बात तो जाने दीजिए, लेकिन किसी भी स्थितिमें यदि प्रतिपक्षीने जातिका प्रयोग किया, झूठा भी उत्तर दिया और उसके निराकरणमें उत्तराभासका उद्भावन अर्थात् यह झूठा उत्तर है ऐसा उसका मर्म खोल देनेकी बात यदि पूर्वपक्षवादी कर सका तब ही तो सभाके लोग इस प्रतिवदीकी हार हुई है ऐसा निर्णय कर पायेंगे। प्रतिवादीने कुछ भी कहा, जाति प्रयोग किया। यदि पूर्वपक्षवादी उस उत्तराभासकी बात खोल दे तब ही तो जातिवादीकी हार सभासद लोग निर्णीत कर सकेंगे, अन्यथा पर्यनुयोज्यकी उपेक्षा हो जानेसे अर्थात् प्रतिवादीने यह झूठा उत्तर दिया है, इस बातको न कह सकनेसे निग्रहप्राप्त प्रतिवादीका निग्रह न कर सकनेसे वादीकी ही हार होगी। समाधानमें कहते हैं कि इस तरह तो जय और पराजयकी व्यवस्था कभी बन ही नही सकती। जब केवल बोलने पर ही दोदापट्टी करनेपर ही जातिकी व्यवस्था मानते हो तो प्रतिवादीने उत्तराभास बोला तो उसपर वादी भी बोल उठा, फिर उसपर प्रतिवादी भी बोलेगा। तब तो किसीकी जीत और किसीकी हार या तत्वका निर्णय ये कभी बन ही नही सकते। अब तो इस स्थितिमें यही कल्पना बनायी जा रही है कि जो चुप रह जायगा उसकी हार है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो बोलता चला जायगा उसकी जीत है : सो अब यहाँ दूसरेके खिलाफ बोलनेकी शक्ति समझमें आयी तो उससे जीत मान ली और बोलनेकी शक्ति समझमें न आयी उससे हार मान ली। यह कोई जय और पराजयकी व्यवस्था नही है। इस तरह व्यवस्था बनायी गई तो कुछ भी निर्णय न हो सकेगा। जैसे जातिवादी बोलता ही चला जा रहा है, चुप नही होता, इस तरह क्या वादी भी बोलता हुआ न चला जायगा ? ठीक उत्तर न ज्ञात होनेपर भी उत्तराभास तो जो चाहे दे सकता है। तो यों जातिके प्रयोग द्वारा जय और पराजयकी व्यवस्था नही बनाई जा सकती, क्योंकि दोनों ही वादी और प्रतिवादी बोलते ही चले जायें, यहाँ सच और झूठकी कोई परीक्षा नही होती है क्योंकि अब तो यहाँ बोलनेपर ही यह निर्भर किया जा रहा है कि किस की जय हुई और किसकी हार। इस तरह जिसने जातिका स्वरूप परखा वह और दूसरा वक्ता भी बोलता चला जायगा उत्तरपक्षवादी वादीकी कही हुई बातमें कुछ भी परिहार करनेमें अगर शक्ति रखता है तो पूर्वपक्षवादीकी हार हुई और नहीं रखता है तो पूर्वपक्षवादीकी जीत हुई। सो यही बात जातिवादीमें भी लगाई जा सकेगी। जातिवादीकी कुछ बात कहे जानेपर यदि वादी कुछ बोल सका तो जातिवादीकी हार हुई, वादीकी जीत हुई, न बोल सका तो जातिवादीकी जय हुई। ये कोई तत्त्व निर्णय के तरीके नही हैं। प्रसंग यह चल रहा है कि जातिका प्रयोग करके सभामें जीतकी व्यवस्था बनाना असंगत है, इसका कारण यह है कि वादीकी कही हुई बातपर प्रतिवादीने जातिका प्रयोग किया। अब वादी भी उसी प्रकार जाति प्रयोग करदे और प्रतिवादी भी करे तो इस तरह कहीं भी विराम न मिलेगा और जय पराजयकी व्यवस्थामें अनवस्था हो जायगी।

प्रतिवादीके जातिरूप असत् उत्तरके प्रयोगमात्रसे वादीके जात्युद्भावन की अशक्तिका अनिर्णय— अब शंकाकार यह कह रहा है कि जब वादीके प्रति जाति स्वरूप असत् उत्तरका प्रयोग कर दिया गया तो इतने ही मात्रसे यह निश्चय सबको हो गया कि वादीमें प्रतिवादीकी कही हुई बातके परिहार करनेकी शक्ति नही है तथा यह भी सिद्ध हो गया कि वादीमें प्रतिवादी द्वारा जातिरूप उद्भावसे दोषको दूर करने की शक्ति नही है, तब अब वादी जातिका प्रयोग करे तो उसका प्रयोग करना व्यर्थ है। एक बार सभासदोंके चित्तमें आ गया कि वादीमें प्रतिवादीके दोषोंको दूर करने की शक्ति नही है अथवा यह अपने साधनमें आये हुए दोषका परिहार नही कर सकता है तब फिर वादी यदि जातिका प्रयोग करे तो उसका मूल्य विद्वानोंके चित्तमें न रहेगा। फिर जय पराजयकी व्यवस्थामें अनवस्था न होगी। समाधानमें कहते हैं कि इस प्रकार प्रतिवादीकी जातिके प्रयोगसे ही वादीमें दोषके परिहारकी अशक्तिका निश्चय कर लिया है। तो यों ही प्रथम ही प्रतिवादीके द्वारा जातिका प्रयोग करनेसे पहिले ही वादीके समीचीन साधनके कहने मात्रसे ही यह निश्चय हो गया कि प्रतिवादीने जो उत्तराभास कहा है उसकी पोल खोलनेकी शक्ति इस वादीमें बराबर है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तब प्रतिवादीने जो प्रथम ही जातिप्रयोग किया उसकी विफलता क्यों न हो जायगी ? अर्थात् पहिले भी (प्रथम बार भी) जातिका प्रयोग करना निरर्थक हो जायगा। उससे जीत रूप प्रयोजनकी सिद्धि नहीं हो सकती है। शंकाकार कहता है कि वादीने जो समीचीन साधन कहा है उसका साधन वचनसे यह निश्चय होगा कि वादीके समीचीन साधनको ही कहनेका सामर्थ्य है, किन्तु यह सिद्ध न होगा कि प्रतिवादीके द्वारा दिया गया जातिके उद्भावन करनेका इसमें सामर्थ्य है। सताधानमें कहते हैं कि इस तरह तो जातिका प्रयोग करनेपर भी उस जातिवादीके याने उत्तराभासवादीके सम्बन्धमें यह निश्चय हो जाता है जाति प्रयोग करनेपर भी इस उत्तराभासवादीके जातिवादीकी याने प्रतिवादीके समीचीन उत्तरको देनेका सामर्थ्य नही है। किन्तु यह निश्चय न हो जायगा कि उद्घाटित किये गये जातिके परिहारका सामर्थ्य नही है। तब जय पराजयकी व्यवस्थामें अनवस्था सर्वथा ज्योंकी त्यों खड़ी रह गयी।

जातिप्रयोगसे जय व्यवस्था माननेपर जातिप्रयोगका अनवस्था न होनेसे तत्त्वनिर्णयका अनवकाश–शंकाकार कहता है कि समीचीन उत्तर देनेका सामर्थ्य न होनेसे ही दूसरेके द्वारा कही गयी जाति परिहारके असामर्थ्यका निश्चय होता है, क्योंकि परके द्वारा उद्भावित जातिके परिहारकी असामर्थ्यका सद्भाव होनेपर ही समीचीन उत्तरके बोलनेका सामर्थ्य नहीं होता है। उत्तरमें कहते हैं कि तो इस तरह समीचीन साधनके कहनेकी सामर्थ्यसे ही इस वादीके प्रतिवादी द्वारा कही गयी जातिके दूषणाभासताके उद्भावन करनेकी शक्तिका भी निश्चय हो जावो, क्योंकि जिस वादीमें प्रतिवादी द्वारा कही गयी जातिके उद्भावन करनेकी शक्ति नही है उसमें समीचीन साधनके कहनेका भी सामर्थ्य नही बन सकता। भला जो सही साधनका प्रयोग कर सकता है उसको क्या जाति छल निग्रह आदिक हथकंडोंकी दूषणाभासताका पता न हो सकेगा ? उसमें इतनी बुद्धि है ही। शंकाकार कहता है कि समीचीन साधनके कहनेमें समर्थ होकर भी वादी कभी कभी जाति प्रयोगसे असत् उत्तरसे कुछ व्याकुल चित्त हो जाय तो उसमें जातिके उद्घटित करनेका सामर्थ्य होना अवश्यंभावी नही हो सकता है। उत्तरपक्षवादी ऐसा समझता है कि वादी सच्चे साधनका प्रयोग करता है लेकिन वह भी कभी प्रतिवादीकी दोंदापट्टीसे व्याकुलचित्त हो जाय और वह प्रतिवादीकी जाति छल आदिकका प्रयोग करनेमें समर्थ न रहे, ऐसा भी तो हो सकता है और तब तीसरा जातिप्रयोग उसे करना चाहिये था, तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो समीचीन उत्तरके कहनेमें असमर्थ हुए जातिवादीके भी अपने द्वारा कहे गए और परके द्वारा प्रकट किए गए उत्तराभासके परिहारमें सामर्थ्यकी असंभवता होनेसे फिर तो चौथी बार जातिका प्रयोग करना अपेक्षणीय हो जायगा। और, फिर वादी भी अर्थात् जिसने पहिले साधनको कहा है ऐसे साधनवादीको भी उस प्रतिवादीकी चौथी जातिका परिहारके, निराकरणके लिए ५ वीं जातिका प्रयोग अपेक्षणीय हो जायगा। फिर उसके मुकाबलेमें जातिवादीके भी वादीकी कही हुई जातिके निराकरण करनेकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योग्यता जतानेके लिए छठवीं बार जातिका प्रयोग करना आवश्यक हो जायगा। यों जाति प्रयोग ही की परम्परा चलती जायगी, फिर इसका कहीं ठहराव भी नहीं हो सकता। यों जय पराजयकी व्यवस्थाका अनवस्थान सिद्ध ही हो जाता है। उक्त कथन का निष्कर्ष यह है कि जाति प्रयोग करके जीतकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती। वादी किसी मंतव्यको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण उपस्थित करे और उसमें प्रतिवादी कोई साधनाभास पक्षाभास आदिक दोष न दे सके तो वादीकी जय है, प्रतिवादीकी पराजय है। और, कदाचित् उसमें दोष दे दिया साधनाभास आदिक कोई दोष था और उसका निराकरण वादी न कर सका तो वादीकी पराजय है और प्रतिवादीकी जय है। तो प्रमाण प्रमाणाभासके माध्यमसे तो जय-पराजयकी व्यवस्था बनती है, किन्तु जातिप्रयोगसे, छल आदिकके प्रयोगसे जय-पराजयकी व्यवस्था नहीं बनती।

प्राप्त दोषका निग्रह न हो पानेसे अनवस्थादोषकी असंभवताकी आशंका—यहाँ जातिवादकी कथन प्रणालीमें अनवस्थाका दोष बताया जा रहा है। वादीके कथनपर प्रतिवादीने जाति बताकर दोष दिया सो उसपर वादी भी दोष दे सकेगा। जाति व छलमें कोई समीचीन उत्तरके देनेका तो नियंत्रण है नहीं, तो इस तरह अनवस्था दोष आयगा। कभी भी वाद समाप्त नहीं हो सकता, इसपर जातिवादी कहता है कि जाति प्रयोगसे जयव्यवस्था माननेमें अनवस्था दोष नहीं आ सकता है, क्योंकि यहाँ प्रतिवादीने पर्यनुयोज्योपेक्षणकी उद्भावना नहीं की है। वादीने कुछ कहा, उसपर प्रतिवादीने किसी जातिका प्रयोग किया उसके बाद जब प्रतिवादीके निग्रह प्राप्त दोषका उद्भावन नहीं कर रहा है अर्थात् प्रतिवादीके लिए वादी उसके कथनमें किसी दोषका उद्भावन नहीं कर रहा है तो अनवस्था दोष कैसे आयेगा? प्रतिवादी अपनी ओरसे ही किसी प्रकारकी जातिको ही उपस्थित कर रहा है और साथ ही उस प्रसंग में जब यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि किसकी हार हुई है तो वहाँ बैठे हुए निर्णायक लोग पूर्वपक्षवादीके पर्यनुयोज्योपेक्षणको प्रकट करते हैं अर्थात् यहां यह प्रतिवादी दोषको प्राप्त होना था, पर इसको यह वादी अभिव्यक्त न कर सका। और, साथ ही यह भी बात है कि जातिवादीने तो छल किया ही सो वह निग्रह प्राप्त है ही. लेकिन जातिवादी स्वयं अपनी गलतीको तो न खोलेगा और वादी है चुप, तो निर्णायक लोग उस प्रतिवादीके निग्रहप्राप्त दोषको यह वादी वर्णन न कर सका, इस तरह प्रकट कर देता है, इस कारण अनवस्थाका दोष नहीं आता। अनवस्थाका दोष तो तब आये जब निर्णायक लोग बीचमें उसमें किसी दोषको न बतायें। यदि वादी प्रतिवादी ही बोलते रहें और निर्णायकका कोई अधिकार न हो तब ना अनवस्था दोष आयगा! यहाँ शंकाकार यह बात कह रहा है कि वादीने कुछ कहा उसपर प्रतिवादीने छल जातिका प्रयोग किया। अब उसके बाद निर्णायक लोग 'वादीने पर्यनुयोज्यकी उपेक्षा अर्थात् प्राप्त दोषकी अपेक्षा की' यह दोष बता देगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकार द्वारा परिकल्पित्त जयतिवन्धनरूप उत्तराप्रतिपत्तिके विकल्पों द्वारा समाधान— अब उक्त शंकाके समाधानमें पूछते हैं कि फिर तो निर्णायक लोग ही जाति आदिक प्रयोगका भी उद्भावत करदें, दोष प्रकट करदे, पूर्वपक्षवादी क्यों प्रकट करे। जब वादीके कहनेपर प्रतिवादीने जातिरूप वात कही और प्रतिवादी के दोषको कहनेकी आवश्यकता वादीको नही बता रहे। निर्णायक ही उसका निराकरण करदे तो प्रथम ही प्रथम जाति आदिकसे प्रयोगका भी निर्णायक उद्भावत करदे। यदि कहो कि वह निर्णायक पूर्वपक्षवादीके ही पर्युनुयोजोपेक्षणको प्रकट करता है और जाति आदिकके प्रयोगको प्रकट नही करते। तो उत्तरमें कहते हैं कि यह तो उन निर्णायकोंका बहुत बड़ा माध्य स्वभाव हो गया कि एकके दोषको प्रकट न करे। यह माध्यस्थ्य नही है, पूर्णपक्षतात है कि प्राश्निक लोग वादीके दोष बतायें और प्रतिवादीके दोषको न प्रकट करें। तो जब निर्णायकोंमें माध्यस्थनभाव न रहा तो अब दोंदाण्ट्टीकी बात रही। फिर तो जो चुप रह गया है वादी उसको यह प्रतिवादी यह कहकर ही कि इसको उत्तरका ज्ञान नही है, जो कुछ मैंने कहा है उसका वह उत्तर नही दे पा रहा है, उत्तरके परिज्ञानका अभाव है, इस प्रकार प्रकट करते हुए ही प्रतिवादी वादीका निग्रह करता है ऐसा मानना चाहिए। और, जब ऐसा मानना चाहोगे तो इस पक्षमें भी यहाँ यह बतलाता प्रतिवादी किस प्रकारके उत्तरके अपरिज्ञानकी उद्भावनाके द्वारा अपनी विजय घोषित करता है ? उतरवादीको उत्तर का ज्ञान नही है ऐसी जो घोषणा करता है उसका अर्थ क्या है ? क्या प्रतिवादीके द्वारा उपस्थित किये गए जातिके अपरिज्ञानका उद्भावनरूप अर्थ है ? उत्तरवादीको उत्तरका परिज्ञान नही है, इसका अर्थ क्या यह है कि प्रतिवादीके द्वारा उपस्थित किए गए जातिदोषका परिज्ञान नही या इसका यह अर्थ है कि वादीके द्वारा उद्भावित जात्यंतरका निराकरण कर दिया गया है। उत्तरवादीने कोई दूसरी जाति बतलाया, दूसरा दोष बताया और उसका निराकरण कर दिया गया क्या यह अर्थ है है उत्तर अप्रतिपत्तिका अथवा उत्तरकी अप्रतिपत्तिका यह अर्थ है कि उत्तरका परिज्ञान ही नही है।

स्वोपन्यस्त जात्यपरिज्ञानके उद्भावनरूप उत्तराप्रतिप्रत्तिका निराकरण— उक्त तीन विकल्पोंमेंमें यदि यह कहो कि प्रतिवादी जो अपनी विजय घोषित कर रहा है वह इस बलपर घोषितकर रहा है कि वादीको हमारी बातके उत्तरका ज्ञान नही है और उत्तरका परिज्ञान नही है, इसका अर्थ यह हैं कि मैंने जो जातिदोष उपस्थितकिया है उसकापरिज्ञान नही है, ऐसा माननेपर तो प्रतिवादीकी हार अवश्यभावी हो गयी। तब प्रतिवादी खुद कह रहा है कि जो सदोष वचन हैं उनका इस वादीको ज्ञान नही है। तो इतने कथनमात्रसे यह सिद्ध हो गया कि प्रतिवादीका वचन है सदोष और वादीका कथन है निर्दोष। प्रतिवादी यही तो कहेगा ना कि देखो मैंने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपकर्षसमा जाति अथवा उत्कर्षसमा जाति या अन्य जातिका प्रयोग किया है, पर इस वादीने न जान पाया कि यह सदोष प्रयोग है। तो ऐसा कहनेसे एक तो प्रतिवादीने यह प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे द्वारा उपस्थित की गई बात जाति दोषरूप थी, उसका इसे अपरिज्ञान है। रहो अपरिज्ञान अथवा न रहो, इसका कोई निर्णय नही करे तो भी इतना तो निश्चित् हो गया कि प्रतिवादीने जो कथन किया है वह जातिदोषसे दूषित है और साथ ही यह भी प्रसिद्ध हो गया कि वादीने जो कुछ भी अपना मतव्य पेश किया है उसका प्रतिवादीपे ठीक उत्तर नही बन सका तभी तो छल जातिका प्रयोग किया है। साथ ही यह भी प्रसिद्ध हो गया कि यह प्रतिवादी असम्बद्ध बोलने वाला है। और, यह भी प्रसिद्ध हो गया कि प्रतिवादी वादीके साधनकी समीचीनताको प्रकट कर रहा है। जबकि प्रतिवादी अपने मुखसे यह कह देता है कि देखो ! इस वादीने मेरा दोष, मेरा कपट, मेरा छल नही जान पाया है, तो इसके कहनेसे तो प्रतिवादीकी हार हो हु और वादीकी जीत हुई। तो जातिके पेश करनेसे लाभ कुछ न मिला, बल्कि पराजय ही हुई। इस कारण यह सिद्धान्त बना कि जय-पराजयकी व्यवस्था छल जाति आदिकके प्रयोगसे होती है, यह कथन बिल्कुल गलत है। समर्थ और असमर्थ वचनसे ही जीत-हारकी व्यवस्था हो सकती है।

प्रतिवादी द्वारा घोषित वादी द्वारा अविज्ञान दोषको स्वयं उद्भावित करते हुए प्रतिवादीकी पराजयका अनिराकरण—शंकाकार कहता है कि वादीने हमारे दोषको नही जान पाया और उस दोषको मैं स्वयं ही जाहिर कर रहा हूँ। ऐसी स्थितिमें प्रतिवादीकी हार न होनी चाहिए। यहां इस वादीने नहीं जान पाया ऐसा, उसका अपराध ही तो बताया जा रहा है। तो समाधानमें पूछते हैं कि वादीने यह दोष नही जान पाया, यह तुमने कैसे निश्चय किया ? क्या यह जानकर निश्चय किया कि वादी चुप हो गया और प्रतिवादी बोलता ही जा रहा है। यदि ऐसा मंतव्य हो तो ठीक नही है क्योंकि वादी सभ्य है, विद्वान है। वादका विस्तार नही होगा, यह सोचकर वह चुप रह गया। अपने वचनोंपर नियंत्रण रखने वाले वादी लोग कभी भी सिद्धान्तसे विचलित नही हो सकते। बल्कि वादी जो चुप रहा वह जानता था प्रतिवादीके जातिदोषको और उसको स्वय प्रकट भी कर देना चाहता था कि प्रतिवादी यहाँ यह छल जाति कर रहा है, लेकिन स्वयं न कहकर चुप रहकर उस प्रतिवादीके दोषको प्रतिवादीके द्वारा ही कहलवा दिया है, तो ऐसा जो दूसरेसे कहलवा देना है यह उसका विवेक है, अज्ञान नही है। इस कारण वादी यदि चुप रह गया तो इसका अर्थ यह नही कि वादी प्रतिवादीके छल और जातिको नही जानता है।

वादीके प्रतिवादीप्रयुक्तजातिदोष ज्ञानका अभावरूप अप्रतिपत्तिकी असिद्धि—वादी जानता है कि यदि मैं स्वयं प्रतिवादीके कहे हुए जातिरूप दोषको प्रकट करदूं तो यह जातिवादी उसके परिहारके लिए फिर और कुछ बोलेगा और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस तरह फिर कही वादका अवसान न हो सकेगा। साथ ही इस वादीने दो बातें भी चुप होकर सिद्ध करदी है। एक तो यह कि देखो इस प्रतिवादीके अज्ञानको महिमा कि इस प्रतिवादीमें ऐसा अज्ञान बना हुआ है कि जिसने स्वयं ही अपने कहे हुए वचन में दोष समूहको प्रकट कर रहा है कि उसने जो कुछ भी कहा है वादीका चुप करने के लिए उसके वचनमें स्वयं यह दोष है। दूसरी बात यह प्रतिवादी अपने कहे हुए वचनमें दोष बताकर वादीके साधनकी समीचीनताको प्रकट कर रहा है। तो इस स्थितिमें वादीके चुप रह जानेसे वादी की जीत ही हुई है और प्रतिवादीकी हार हुई है सइ तरह स्पष्ट कि जीत और हारकी व्यवस्थाके कारण समर्थ वचन और असमर्थ वचन हैं यदि यहां जातिवादी यह कहे कि पूर्व पक्षवादीने जो साध्य उपस्थित किया है उसपर मैं यह कहूँगा कि मेरे द्वारा प्रयुक्त यह जाति है और तुमने मेरे बतानेसे पहिले नहीं जाना और अब जाना तो उसके बतानेके बाद ही तो तुमने मेरे कथनका दोष जाना है पहिले तो नही जाना इस कारण अज्ञानके ही कारण यह पूर्वपक्षवादी चुप हो गया है अथवा प्रतिवादीने चुप कर दिया है और प्रतिवादी अपनी बातको बोलता ही गया। ऐसा कहनेपर समाधानमें कहते हैं कि इस वादके निर्णयमें क्या प्रमाण है ? केवल कसम खाना ही प्रमाण है। वही शरण है। वादीने प्रतिवादीकी जाति दोषको पहिले नही जाना और प्रतिवादीके स्वयं दोष उगलनेपर जाना। इस बातकी सिद्धि नही की जा सकती है। शंकाकार कहता है कि यह पूर्व-पक्षवादी यदि मेरे जाति दोषको जानता भी हो और जान करके भी चुप रह गया हो अथवा इसपर कुछ और बोल देवे तो भी वादने समीचीन उत्तर तो नही दिया। उसकी जातिरूप दोष कहनेके बाद तो समीचीन उत्तरवादीका नहीं आया। फिर कैसे वादीकी हार न होगी ? समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो जातिवादीके लिए भी समानतासे कही जा सकती है। जातिवादी जातिको उपस्थित भी करे तो भी जाति-वादी समीचीन उत्तर तो नही दे सका। तब समीचीन उत्तर न देनेके कारण इस जातिवादीकी भी कैसे हार सिद्ध न होगी, क्योंकि जातियाँ जितनी हैं वे सब दूषणा-भास रूप हैं। इस प्रकार उत्तरके अप्रतिपत्तिके सम्बन्धमें उठाये गए विकल्पसे प्रथम विकल्पकी बात नही बन सकती अर्थात् प्रतिवादीके द्वारा बताई गई जातिका वादी को ज्ञान नही है। इस प्रकार जो एक उद्भावन किया है, यही उत्तरकी अप्रतिपत्ति कहलाती है। और, इस प्रकार उत्तरकी अप्रतिपत्ति होनेसे वह वादी चुप हो गया है। इस तरह इस वादीको प्रतिवादी हरा ही देता है। यह बात सिद्ध न होगी।

जात्यन्तरनिराकरणरूप उत्तराप्रतिपत्तिकी मीमांसा—अब यदि दूसरा विकल्प मानते हो कि वादीने जाति विशेष जो प्रकट की है इसका निराकरण हो गया है इससे यह ज्ञात हुआ कि वादीको उत्तरका परिज्ञान नही है और ऐसे उत्तरके अपरिज्ञानरूप स्थितिके कारण यह वादी हार जाता है। ऐसा दूसरा विकल्प कहना भी युक्त नही है, क्योंकि प्रतिवादीके द्वारा उपस्थित की गई जात्यंतरका निराकरण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नही हुआ, यह कैसे प्रतिवादी समझ जाता है ? क्या अपने द्वारा उपस्थित की गई जाति स्वरूपके परिभाषणसे या उसकी अनुपलब्धिसे ? अपने द्वारा उपस्थित की गई जातिके स्वरूपके अनुवादसे तो यह नही समझा जा सकता कि वादीको उत्तर की अप्रतिपत्ति है । जैसे कि यह उत्कर्षसमा जाति नहीं है अपकर्षसमा होनेसे । इस इरह जातिस्वरूपके अनुवादसे जात्यंतरका निराकरण उद्भावित कर दिया गया यह बात नहीं बनती, क्योंकि इसमें तो प्रथम पक्षमें कहा हुआ दोष ही आता है । अनुपलब्धिसे भी यह बात नही बता सकते कि वादीको उत्तरकी अप्रतिपत्ति है । क्योंकि अनुपलम्भ मात्रसे तो अप्रमाण है और विशिष्ट अनुपलम्भकी बात कही सो वह प्रतिवादीके द्वारा उपस्थित की गई जातिस्वरूपकी उपलब्धि रूप है सो वहाँ भी उत्तरकी अप्रतिपत्तिका समर्थन नहीं होता । तब यह बात सिद्ध हो जाति है कि जातिवादी अपने प्रतिवादीको अर्थात् पूर्वपक्षवादीको जो कि जात्यन्तरको प्रकट कर रहा हो उसको यह प्रतिवादी हरा देता है, इस कारणसे कि वादीके द्वारा प्रकट किए गए जात्यंतरका निराकरण हुआ, इस तरह वादीको उत्तरका ज्ञान न था यह घोषित कर दिया गया । इस विकल्पसे भी वादीकी पराजय सिद्ध नही की जा सकती है ।

उत्तरापरिज्ञानरूप उत्तराप्रतिपत्तिकी मीमांसा— अब यदि तीसरा विकल्प कहते हो कि वादीको उत्तरका परिज्ञान ही नही है । इतने मात्रसे वादीकी पराजय होती है । क्योंकि जब प्रतिवादी यह कहता है कि इसने उत्तर नही जाना है इस प्रकार के उत्तरकी अप्रतिपत्ति मात्रको प्रकट करता है । पूर्वपक्षवादीका यह प्रश्न होना अवश्यभावी है कि मैंने उत्तर दिया और यह अनुत्तर कैसे हो गया ? और जातिवादी द्वारा उत्तरकी अप्रतिपत्ति है । इस बातको विशेष रूपसे प्रकट करना चाहिए । उसके द्वारा उपस्थित की गई भी यह जाति इसने नही जाना है और जाति विशेषको उपस्थित किया है, यह बात उसे प्रकट करना चाहिए और इस प्रसंगमें पहिले कहे गए समस्त दोष आते हैं अर्थात् उत्तरकी अप्रतिपत्ति है, यह बात सिद्ध नहीं हो सकती यों उत्तरकी अप्रतिपत्तिके उद्भावनके सम्बन्धमें जो तीन विकल्प किए गए हैं उन तीन ही प्रकारोंमें जातिवादीकी हार नियमित सिद्ध हो गई है और. फिर यह सोचकर कि बिल्कुल हार हो जानेसे तो लोगोंकी दृष्टिमें संदेह डाल देना यह युक्त है । और ऐसा जानते हुए भी जब जाति आदिका प्रयोग करता है तो यह वचन इस नैयायककी अनैयायिकताको ही सिद्ध कर रहा है । इस प्रकार इस सम्बन्धमें यह निर्णय करना चाहिए कि जातिके प्रयोगसे जीत नही हुई है किन्तु अपने पक्षकी सिद्धिसे ही जीत है और अपने पक्षकी अप्रसिद्धिसे ही हार है ।

जातिप्रयोगमें जय पराजयकी व्यवस्थाके निबन्धनत्वका अभाव— मिथ्या उत्तर रूप जातियाँ यदि सैंकड़ों भी कही जायें तो उससे जातिवादीकी जीत न हो जायगी और यहां जीतहारसे मतलब इतना ही है कि लोग तत्त्वका सही स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जान जायें और सही स्वरूप जानकर अपने कल्याणमें लग जायें। केवल दुनियाको यह बतानेके लिए कि मेरी जीत हुई है और इसप्रतिवादीकी हार हुई है यह आशय तो एक कलहका रूप रखता है कल्याण भावनाकी यह जय पराजय व्यवस्था नहीं है यहां छल जाति आदिकका आशय न बनाकर केवल यही भावना वादी और प्रतिवादी दोनोंमें होना चाहिए कि कल्याण किस प्रकार हो। वस्तुस्वरूप सही किस प्रकार है। केवल उस वस्तुस्वरूपकी घोषणा हो जाय, प्रजाजन जान जायें और उस तरह ये सब सन्मार्गपर चल सकें यह बात बतानी युक्त है। इसीसे ही जय पराजयकी व्यवस्था की बात कही जाती है। और इस प्रकार इस प्रसंगमें यह ही निर्णय करना श्रेयस्कर है कि जो कोई वादी प्रमाण उपस्थित करे और उस प्रमाणमें प्रतिवादी दोष देवे, उस दोषका यदि वादी परिहार कर देता है तो इससे वादीके पक्षकी सिद्धि हो जाती है और प्रतिवादीका दूषण जाहिर हो जाता है कि यह प्रतिवादी ऐसे समीचीन मंतव्यमें दोष उपस्थित करनेका ही दूषण करनेका ही आशय रख रहा है। तत्त्व निर्णयसे इसके विचारका सम्बन्ध न था। इसी प्रकार किसीने प्रमाणाभास उत्पन्न किया और उस प्रमाणाभासमें प्रतिवादीने दोष उपस्थित किया। अब यह उस दोष को यदि दूर नहीं कर सकता है तो वादीके लिए वह साधनाभास है। वह अपने पक्ष का सिद्धि न कर सका और प्रतिवादीके लिए वह स्थिति भूषणस्वरूप है। प्रतिवादी के मंतव्यकी सिद्धि होती है और वादीका पक्ष गिर जाता है। तो जिसके पक्षकी असिद्धि हुई उसकी हार समझना चाहिए। इस प्रकार जय पराजयकी व्यवस्था समर्थ वचन और असमर्थ वचनसे होती है। जिसके मंतव्यमें पक्षाभास हेत्वाभास आदिक कोई दोष नहीं है जिसके अनुमानमें अन्वयव्यतिरेक व्याप्ति निर्दोष है उसकी है जीत और जिसके कथनमें हेत्वाभास आदिक दोष आते हैं और व्याप्ति भी समीचीन नहीं बनती है उसका कथन है सदोष और उसके पक्षकी सिद्धि नहीं हो पाती। ऐसा तत्त्व-निर्णय जानकर जानकार लोग हितप्राप्तिके अर्थ अहित परिहारके अर्थ सुनिर्णीत तत्त्वकी उपासनामें लग जाते हैं और पुष्टरूपसे निर्णीत कुतत्त्वकी उपासनाको छोड़ देते हैं। इसीलिए ही दर्शन शास्त्रको व्यवस्था है। इसका प्रयोजन कोई लोकमें जीत-हार प्रकट करनेका नहीं है।

निग्रहस्थान द्वारा जय-पराजयकी व्यवस्थाका प्रयास जिस तरह छल और जातिके प्रयोगसे जय-पराजयकी व्यवस्था न बन सकी उसी तरह निग्रह स्थानोंके द्वारा भी जय और पराजयकी व्यवस्था नहीं बन सकती। यौगसिद्धान्तके न्यायसूत्रमें निग्रहस्थानका सामान्य लक्षण यह किया गया है कि विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्तिको निग्रहस्थान कहते हैं। विप्रतिपत्तिमें दो शब्द हैं—वि और प्रतिपत्ति। वि का अर्थ है विपरीत और प्रतिपत्तिका अर्थ है जानकारी अर्थात् विपरीत जानकारीको विप्रतिपत्ति कहते हैं। अप्रतिपत्तिका सामान्यतया अर्थ है जानकारी न होना। और, वह किन अर्थोंमें फलित होता है ? सो पहली बात यह है कि पक्षको जानकर, मान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर, कहकर फिर उसको स्थापना न कर सकना अर्थात् प्रतिज्ञा तो की पर उसका निभाव न कर सकना। दूसरी बात है कि प्रतिवादीने अपनी कोई बात स्थापित की उसका प्रतिषेध न कर सकना। तीसरी बात यह है कि प्रतिवादीने पक्षका निषेध किया अब उस प्रतिसिद्ध प्रतिज्ञाका उद्धार न कर सकना अर्थात् प्रतिवादीके द्वारा दिए गए दोषका परिहार न कर सकना, यह सब अप्रतिपत्ति कहलाती है। अप्रतिपत्तिका सामान्यतया यह अर्थ है कि आरम्भके विषयमें आरम्भ न हो सकना। जो बात सामने आ पड़ी हो सिद्ध करनेकी अथवा निषेध करनेकी, उसको न निभा सकना, बस यही अप्रतिपत्ति कहलाता है।

प्रतिज्ञाहानि निग्रह स्थानका कथन— निग्रह स्थानके विशेष लक्षण प्रतिज्ञा हानि आदिक रूपमें बताये गए हैं जिनका क्रमसे वर्णन करते हैं, विशेषको जाननेपर सामान्यका भी स्पष्ट बोध हो जाता है, इस लिए अब निग्रह स्थानके जो भेद हैं उनका लक्षण प्रारम्भ करते हैं। निग्रह स्थानमें पहिला भेद है प्रतिज्ञा,हानि। प्रतिज्ञाहानिका अर्थ है कि हेतुके कहे जानेपर अथवा उस कहे हुए हेतुमें दूषणके प्रकट करनेपर उस पक्षको मान लेना अर्थात् दूसरेके दूषणको किसी अंशमें मानकर अपनी प्रतिज्ञाका त्याग कर देना सो प्रतिज्ञाहानि है। इसका लक्षण न्यायसूत्रमें इस प्रकार कहा है कि प्रतिदृष्टान्तके धर्मको अपने दृष्टान्तमें मान लेना सो प्रतिज्ञा हानि है। वादी अपनी बात उपस्थित करता है, अपना पक्ष मंतव्य बताता है। और, उसपर दृष्टान्त भी देता है। जैसे कि अनुमानोंमें प्रायः होता है कि प्रतिज्ञा हेतु बोलनेके बाद उदाहरण दिया जाता है तो वादीने सांगोपाङ्ग अनुमान प्रस्तुत किया। उसमें दृष्टान्त भी आया। अब प्रतिवादी उसकी प्रतिज्ञाके खिलाफ कोई दृष्टान्त रखता है तो वादी उस प्रतिदृष्टान्तके धर्मको मान ले अपने दृष्टान्तमें तो वह प्रतिज्ञाहानि है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि वादीने कोई साध्य सिद्ध करना चाहा था। हेतु दृष्टान्त सब उपस्थित करके, अब प्रतिवादीके साध्य धर्मके खिलाफ कोई धर्म कहकर वादीको दूषित किया तब वादी प्रतिवादीके कहे हुए प्रति दृष्टान्तके धर्मको अपने दृष्टान्तमें मानता हुआ प्रतिज्ञाको त्यागता है तो वह वादीकी प्रतिज्ञाहानि कहलाती है जैसे कि वादीने अपना यह मंतव्य रखा कि शब्द अनित्य है ऐन्द्रियक होनेसे अर्थात् इन्द्रियग्राह्य होनेसे घटकी तरह। ऐसा वादीके द्वारा कहे जानेपर प्रतिवादी दूषण देता हुआ कह रहा है कि इन्द्रियग्राह्य तो सामान्य भी है और वह नित्य देखा गया है तो फिर उसी प्रकार शब्द भी क्यों न नित्य माना जाय ? इस प्रसंगमें वादी अपने द्वारा कहे हुए हेतुको आभासताको जानता हुआ भी वादमें सम्बन्धित न करके प्रतिज्ञा त्याग करता है। यों कह देता है कि यदि सामान्य इन्द्रियग्राह्य है और नित्य है तो घट भी नित्य हो जाय। इस प्रसंगमें वादीने अपने दृष्टान्तको दूषित कर लिया। प्रतिवादीका यह कथन था कि जैसे घटमें घटत्व है तो घट तो हुआ पदार्थ, एक भौतिक वस्तु द्रव्यरूप और उसमें जो घटत्व है वह हुआ सामान्य, तो घटको निरखकर घटत्व भी तो जान लिया गया। तो जैसे घट इन्द्रिय-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ग्राह्य है ऐसे ही सामान्य भी इन्द्रियग्राह्य है। अब यहाँ देखिये कि सामान्य इन्द्रियग्राह्य है और नित्य है। सामान्यको घटत्वको तो वैशेषिकोंने नित्य नही माना। सामान्य एक अलग पदार्थ है। तो प्रतिवादी यहाँ जब एक दूषण देता है कि इन्द्रियग्राह्य तो सामान्य भी है और वह नित्य देखा गया है तब फिर शब्द भी इन्द्रियग्राह्य है तो वह क्यों न नित्य हो जाय ? ऐसा प्रतिवादीने कहा, तो वादी उस समय अपने कहे हुए हेतुका मिथ्यापन जान रहा है, लेकिन बाद समाप्त हो जाय इस अभिप्रायसे वह कहता है कि यदि सामान्य ऐन्द्रियक है और नित्य है तो घट भी नित्य हो जाय। यहाँ वादीने मूल प्रतिज्ञामें दोष स्वीकार नही किया। साध्य विरुद्ध बातको पक्षमें स्वीकार न करके दृष्टान्तको स्वीकार किया। तो यह वादी साधन सहित दृष्टान्तकी नित्यताको मानता हुआ मानो यह निगमन पर्यन्त समस्त अनुमानगत पक्षोंको छोड़ देता है। केवल दृष्टान्त में ही साध्य विपरीत धर्मको स्वीकार किया। लेकिन इतने मात्रसे हुआ तो सर्व अपहार। निगमन पर्यन्त समस्त अनुमान, इनका भंग हो गया। तो जब यह पक्षको छोड़ रहा है, प्रतिज्ञाको त्याग रहा है तो यह प्रतिज्ञाहानि कहलाता है, क्योंकि पक्ष प्रतिज्ञा के आश्रयमें रहता है, जहाँ प्रतिज्ञा ही भंग हो गयी तो अब उसका पक्ष ही क्या रहा? इस तरह न्याय सूत्रमें यौग सिद्धान्तमें प्रतिज्ञाहानिके विषयमें वर्णन है।

प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थानके विवेचनकी मीमांसा—अब प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थानपर विचार करिये तो उक्त बात असंगत है, क्योंकि साक्षात् दृष्टान्तकी हानि रूप है प्रतिज्ञाहानि अर्थात् दृष्टान्तमें ही साध्य धर्मका परित्याग कर दिया गया है। अनुमान बनाया गया था कि शब्द अनित्य है इन्द्रियग्राह्य होनेसे। तो प्रतिवादीने विकल्प उठाकर प्रतिदृष्टान्त देकर विरुद्ध धर्म बताया तो वादीने दृष्टान्तमें साध्य धर्मको स्वीकार किया है, तो उसने साध्य धर्मको दृष्टान्तमें ही तो छोड़ दिया, तो साक्षात् तो अभी प्रतिज्ञा हानि नही है। हाँ, परम्परया हेतु उपनय निगमनका त्याग हो गया, उसका विवरण देकर इसका त्याग हो गया क्योंकि दृष्टान्त जब मिथ्या बन गया तो जिस बातको सिद्ध करनेके लिए दृष्टान्त दिया गया था वह बात भी मिथ्या हो जाती है। तो इस परम्परयासे यह बात बनी साक्षात् तो दृष्टान्तमें ही साध्य धर्मका त्याग हुआ। साथ ही यह भी बात समझनी चाहिए कि शब्दको अनित्य कहा इन्द्रियग्राह्य होनेसे, घटका दृष्टान्त भी दिया। जरा घटपर ही विचार करलो। घट इन्द्रियग्राह्य है और वह अनित्य है पर घटमें जो घटत्व है सो किसी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य नहीं है, वह तो मन द्वारा, विचार द्वारा समझा गया है। इन्द्रियां ५ होती हैं। पांच इन्द्रियके विषय हैं - स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द सामान्य। इन विषयोंमेंसे किसी भी विषय रूप नहीं है और जिसके सिद्धान्तसे सामान्य ऐन्द्रियक है और इसी कारण वादीके कहे गए अनुमानमें दोष आता है। तो वहाँ हेत्वाभासके कारण उसके अनुमानमें दोष आया है।

प्रतिज्ञाहानिके सम्बन्धमें वार्तिककारका विवेचन और उसकी मीमांसा

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिज्ञा हानिके सम्बन्धमें न्यायसूत्रके वार्तिककार ऐसा कहते हैं कि दृष्टान्तका यह अर्थ है कि अन्तमें यह देखा गया, स्थित हुआ, इससे इसे दृष्टान्त कहते हैं। दृष्टान्त शब्दमें दो शब्द हैं—इष्ट और अन्त। अन्तमें यह स्थित है इसलिए इसको दृष्टान्त कहते हैं। जब कोई अपना मंतव्य कहा जाता है तो उस मंतव्यमें दृष्टान्त पीछे दिया जाता है। जैसे इसी अनुमानमें यह पद्धति अपनाई गई है कि शब्द अनित्य है इंद्रिय ग्राह्य होनेसे घटकी तरह। सब कुछ बात कह चुकनेपर फिर दृष्टान्तका प्रयोग होता है। तो इस तरह दृष्टान्त कहलाया पक्ष और स्वपक्ष। और, फिर प्रतिदृष्टान्तके धर्म से मान लेना इसे प्रतिज्ञा हानि कहते हैं। तो दृष्टान्तका अर्थ हुआ पक्ष अथवा स्वपक्ष और प्रतिदृष्टान्त बन गया प्रतिपक्ष। तब सीधा यह भाव हुआ कि प्रतिपक्षके धर्मको स्वरूपमें मान लेना, इसे प्रतिज्ञा हानि कहते है। यहाँ स्वपक्ष था—शब्द अनित्य है इन्द्रिय ग्राह्य होनेसे। तो अनित्यपना यह पक्षका धर्म है। तो उसका प्रतिपक्ष हुआ नित्यपना। उस नित्यपनेको अपने पक्षमें, घटमें मान लेते हैं तो वह प्रतिज्ञा हानि है। ह किस प्रकार माना गया है कि यदि सामान्य ऐन्द्रियक और नित्य है तो शब्द भी इसी प्रकार नित्य हो जाय, क्योंकि वह इंद्रियग्राह्य है। इस प्रकारसे प्रतिज्ञा हानिके विवरणमें वार्तिककार ऐसा कहते हैं, लेकिन इस कथनमें व्यामोह है, यह बात प्रकट सिद्ध होती है क्योंकि प्रतिपक्षको स्वपक्षमें मान लेने मात्रसे प्रतिज्ञा हानिका निश्चय नही किया जा सकता है, किन्तु प्रतिपक्षकी सिद्धि बने तो उससे निग्रह बन सकता है। प्रतिपक्षकी सिद्धि हुए बिना कोई भी पुरुष निग्रहका अधिकरण नही बन सकता। वादी अपना पक्ष सिद्ध कर रहा, प्रतिवादी अपना प्रतिपक्ष बता रहा। तो प्रतिपक्षकी द्धि यदि हो गयी तो उसका अर्थ है कि वादीका पक्ष गिर गया। तो वादीका मंतव्य सिद्ध न हो, इसीका नाम निग्रह है। तो प्रतिपक्षकी सिद्धि हुए बिना वादीके पक्षका निग्रह नही हो सकता है।

प्रतिज्ञाहानिमें अनेक कारण हो सकनेसे प्रतिज्ञाहानिके लक्षणकी असमीचीनता—प्रतिज्ञाहानिके सम्बन्धमें दूसरी बात यह भी है कि प्रतिज्ञा त्यागमें केवल एक ही कारण तो नही होता कि प्रतिपक्षके धर्मको स्वपक्षमें मान लें याने प्रतिदृष्टान्तके धर्मको दृष्टान्तमें मान लें बस इस ही कारणसे प्रतिज्ञाहानि होती हो, यही एक प्रकार प्रतिज्ञाहानिमें नही है। उसमें अनेक कारण होते हैं। वादीका किन्ही शब्दों में तिरस्कार कर दिया जाय तो तिरस्कार आदिकके द्वारा आकुलित हो जानेके कारण भी तो प्रतिवादीके किसी प्रतिदृष्टान्त आदिक अंगकी बात किसी रूपमें अंगीकार कर लेता है अथवा भरी सभामें बात करना एक बहुत बड़ा काम है, और ऐसे समयमें प्रकृतिसे कुछ भीरुता उत्पन्न होती है और यदि वह वादी प्रकृतिसे सभाभीरु है तो उस सभामें भी किसी बातका प्रतिवादी स्वीकार कर लेता है अथवा वादीका उपयोग कहीं दूसरी जगह हो, वह कुछ अन्य बात ही विचार रहा हो और ऐसे समयमें भी प्रतिवादीकी बातको किसी रूपमें अंगीकार कर सकता है आदिक अनेक निमित्तोंसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कुछ तो साध्यरूपसे प्रतिवादीने की थी और सके विपरीत बातको जानता हुआ भी उपालम्भसे अनेक कारणोंसे वह कभी कोई बात ऐसी ही सही इस रूपमें कह लेता है तो यह बात तो न रही जैसा कि प्रतिज्ञा हानिके लक्षणमें कहा है कि प्रतिपक्षके धर्म को स्वपक्षके मान लेनेसे प्रतिज्ञाहानि होती है उसमें एक ही कारण नहो, यों अनेक हैं।

प्रतिज्ञामें कमी होनेसे हेत्वाभासादि द्वारा निग्रहपात्रता - प्रतिज्ञाहानि के सम्बन्धमें एक बात यह भी है कि प्रतिज्ञा ही वादोने जब कमजोर की हो तो उसकी यह कमजोरी पक्षाभास, हेत्वाभास आदिकसे बनी हुई है। तो जो मूल दूषण हैं उनके प्रयोगसे वादीके कहे हुए प्रमाणमें दोष उपस्थित करना चाहिए। यदि वादी प्रतिवादी के द्वारा उपस्थित किए हुए दोषोंका परिहार नही कर सकता है तो वहाँ प्रतिवादीकी जय है और वादीकी पराजय है, किन्तु नियमानुकूल पद्धतिसे तो वह वादीके वक्तव्यमें दोष न दे सका और अन्य तरहसे शब्दोंका योजन करके उसे दूषित किया जा रहा है तो इससे सभ्य पुरुषोंमें तो जय और पराजयकी व्यवस्था न बन जायगी। वादीके अनुमानमें अनेकान्तिक आदिक हेत्वाभास आते हैं तो अनुमान उनका दूषित है। पूर्व कथित पक्षाभास हेत्वाभास आदिकसे वादीके सिद्धान्तको दूषित करना यह एक नियमित पद्धति है उससे ही जय-पराजयकी व्यवस्था बनती है।

प्रतिज्ञान्तर निग्राहस्थानका परिचय दूसरा निग्रहस्थान बताया गया है प्रतिज्ञान्तर। प्रतिज्ञान्तरका न्यायसूत्रमें अर्थ किया गया है कि प्रतिज्ञा किए हुए पदार्थ के प्रतिषेधमें धर्मभेदसे उस अर्थका निर्देश कर देना सो प्रतिज्ञान्तर है। इसका स्पष्ट भाव यह है कि जैसे वादीने यह प्रतिज्ञा बनाई कि शब्द अनित्य है इन्द्रियग्राह्य होनेसे तो यह प्रतिज्ञात अर्थ क्या कहलाया ? शब्द अनित्य है। अब शब्द अनित्य है इस प्रतिज्ञात अर्थका प्रतिवादीने इन्द्रियग्राह्य होनेसे इस हेतुमें व्यभिचार दिखाकर निषेध कर दिया, प्रतिषेध कर दिया अर्थात् शब्द अनित्य नही हो सकता। शब्दकी अनित्यता को साधने वाले वादीके द्वारा जो कहा हुआ अनुमान है उस हेतुमें व्यभिचार दोष आता है। सामान्य भी इन्द्रियग्राह्य है और वह अनित्य नही है, इस तरह व्यभिचार दिखाकर वादीके प्रतिज्ञात अर्थका प्रतिषेध किया। अब वादी प्रतिवादीके कहे हुए दोषका परिहार तो करता नही, किन्तु धर्मके विकल्प बना देता है। वह पूछता है कि क्या यह शब्द असर्वगत है घटकी तरह अथवा सर्वगत है सामान्यकी तरह यों धर्म विकल्पसे पूछता है। यदि असर्वगत है शब्द, घटकी तरह तो जैसे घट अव्यापक है और अनित्य है इसी प्रकार शब्द भी अव्यापक है और अनित्य रहा। इस प्रकार एक प्रतिज्ञान्तर वादीके द्वारा बन गया। यही कहलाती है प्रतिज्ञान्तर नामका निग्रहस्थान। क्योंकि इसमें वादी द्वारा प्रतिज्ञान्तरकी सामर्थ्यका परिज्ञान न किया जा सका। पहिले जो प्रतिज्ञा की थी वह शब्द अनित्य है, इस प्रतिज्ञाके साधन करनेके लिए ही उत्तर प्रतिज्ञा कर दी गई कि शब्द असर्वगत है और अनित्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है लेकिन वादीने यह न समझा कि कोई प्रतिज्ञा अन्य प्रतिज्ञाके साधन करनेमें समर्थ नहीं होती। यदि एक प्रतिज्ञा दूसरी प्रतिज्ञाको सिद्ध करनेमें समर्थ हो जाय तो इसमें अनेक प्रसंग आते हैं। इस प्रकार प्रतिज्ञान्तरके सम्बन्धमें निग्रहवादी प्रतिज्ञान्तर नाम का निग्रहस्थान बताता है किन्तु यह निग्रह स्थान पहिले कहे हुए प्रतिज्ञा हानिके निराकरणसे ही निराकृत हो जाता है। इस कारण सीधा तो एक यह है कि प्रतिज्ञा हानिकी तरह प्रतिज्ञान्तरमें भी अनेक निमित्त हो जाते हैं। फिर दूसरी बात यह है कि पहिले जो प्रतिज्ञा हानि नामका निग्रहस्थान बताया गया था उस निग्रहस्थानसे और प्रतिज्ञान्तर नामके दूसरे निग्रहस्थानमें अन्तर क्या आया? प्रतिज्ञा हानिमें भी पक्षत्यागकी बात कही जा रही थी और प्रतिज्ञान्तरमें भी जब दूसरी प्रतिज्ञा पर आया, तो पक्षत्याग हो गया। तथा जिस प्रकारसे स्वदृष्टान्तमें प्रतिदृष्टान्तको मान लेनेसे पक्षत्यागकी बात कही गई थी उस ही प्रकार प्रतिज्ञान्तरसे भी पक्षत्यागकी ही बात बनी। इस कारण प्रतिज्ञाहानिमें प्रतिज्ञान्तरमें कोई अन्तर नजर नहीं आया। यहाँ शंकाकार यदि ऐसा कहे कि प्रतिज्ञान्तरसे जो पक्षत्याग हुआ है वह उसका अपने पक्षकी सिद्धिके लिए हुआ है। लेकिन प्रतिज्ञा हानिमें जो वादीने पक्ष त्याग किया था वह प्रतिपक्षकी सिद्धिके लिये बन गया था, इसलिए अन्तर है। इसपर कहते हैं कि जैसे अपने पक्षकी सिद्धिके लिए प्रतिज्ञान्तर वादीने स्वीकार किया है। उसी प्रकार शब्दके अनित्यत्वकी सिद्धिके लिए भी वादीने प्रतिज्ञाहानि की है। उसमें उस समय ध्यान न रहा। भ्रान्तिके वशसे वह दृष्टान्त उस प्रतिपक्षीके धर्मको स्वीकार कर बैठा। तो वहाँ भी प्रकट रूपसे वादीने यह ध्यान न रखा कि ऐसा प्रतिवादीके प्रतिदृष्टान्तके धर्मको मान लेनेसे साध्यके विरुद्ध बात आती है। तो दोनों ही जगह स्वपक्ष सिद्ध की ही बात रही। फर्क यह रहा कि कुछ शब्दकी पद्धतिमें अन्तर है। पर प्रतिज्ञा हानि और प्रतिज्ञान्तरसे जो कुछ पक्षत्यागकी बात बनती है वह दोनोंमें एक समान है। अतः प्रतिज्ञान्तर नामका निग्रह स्थान युक्त नहीं है।

प्रतिज्ञाहानि व प्रतिज्ञान्तरमें प्रतिज्ञात्यागकी अविशेषता—प्रतिज्ञा हानिमें वादी भ्रान्तिके वशसे तथा तिरस्कार आदिकके कारण कल्पित सभाभीरुता अन्य मान्यता आदिकके कारण वह यों कह गया अथवा मान गया कि उसी तरह शब्द भी नित्य हो, किन्तु दृष्टान्तमें प्रतिदृष्टान्तके धर्मके मान लेने मात्रसे वह निग्रहके योग्य नही है। यदि कहो कि अभ्रान्त पुरुषके अतिरिक्त यह विरुद्ध वचन नहीं हो सकती तो इसी प्रकार अभ्रान्त पुरुषके प्रतिज्ञान्तर नामक निग्रहस्थान भी न कहना चाहिए। यदि कहो कि निमित्तके भेदसे उन दोनोंमें भेद आ जायगा प्रतिज्ञाहानिमें और कुछ निमित्त है। प्रतिज्ञान्तरमें अन्य निमित्त है। तो यों निमित्त भेदसे इन दोनों के भेद माननेपर अनेक अनिष्ट निग्रहस्थानोंका भी प्रसंग हो जायगा। यदि कहो कि उन अनिष्ट निग्रहस्थानोंका प्रतिज्ञा हानि आदिकमें ही अन्तर्भाव हो जाता है तब तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिज्ञान्तरका भी प्रतिज्ञा हानिमें अन्तर्भाव हो जाय । फिर इन दोषोंको कहनेकी क्या आवश्यकता है ।

प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थानका परिचय —अब तीसरा निग्रहस्थान है प्रतिज्ञा विरोध प्रतिज्ञा और हेतुका विरोध होना सो प्रतिज्ञाविरोध है, ऐसा न्यायसूत्रमें कहा है । जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जहां हेतुके द्वारा प्रतिज्ञाका विरोध हो जाता है अथवा प्रतिज्ञाके द्वारा हेतुका विरोध हो जाता है उसे प्रतिज्ञाविरोध कहते हैं । जैसे कहा कि गुणके व्यतिरिक्त द्रव्य होता है । क्योंकि रूप आदिक गुणोंसे भिन्न रूपमें उपलब्धि नहीं है । ऐसा जो अनुमान बनाया गया वह असंगत है । यहां हेतुके द्वारा प्रतिज्ञाका विरोध हुआ ना । हेतु बनाया है कि रूप आदिक गुणोंसे भिन्न उपलब्ध नहीं होता तो रूपादिक गुणोंसे जो भिन्न न पाया जाय उसे गुणोंसे भिन्न कैसे स्वीकार कर लिया ? तो यहां हेतुके द्वारा प्रतिज्ञाका प्रतिज्ञापन खण्डित कर दिया गया । इस प्रकार प्रतिज्ञाविरोध नामका यह निग्रहस्थान माना तो जा रहा है लेकिन प्रकारान्तरसे देखिये तो यह भी प्रतिज्ञाहानि ही कहलायेगी । प्रतिज्ञा विरोध नामक अलगसे निग्रह स्थान कहना नहीं बन सकता है । यह भी प्रतिज्ञाहानि ही है । यहांपर विरोधता लक्षण वाला हेतु कहा गया है । इसलिये यह विरुद्ध हेत्वाभास हो गया । विरुद्धता वाला दोष कहा गया है, इसलिये हेत्वाभासके कारण यह अनुमान दूषित बनेगा । इससे प्रतिज्ञा दोषके कारण अनुमानसे दूषित करनेकी बात कहना युक्तियुक्त नहीं है ।

प्रतिज्ञासन्यास निग्रहस्थानका परिचय—चौथा निग्रह स्थान कहा है प्रतिज्ञा संन्यास । इसका लक्षण न्यायसूत्रमें यों कहा गया है कि पक्षका प्रतिषेध होनेपर प्रतिज्ञात अर्थका अपनयन कर लेना सो प्रतिज्ञासंन्यास है जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वादीके कहे हुए हेतुमें प्रतिवादीने कोई दूषण उपस्थित किया उस स्थितिमें अपने साध्य का परित्याग कर देना इसको प्रतिज्ञा संन्यास कहते हैं । जैसे कि वादीने अनुमान किया कि शब्द अनित्य है इन्द्रियग्राह्य होनेसे घटकी तरह । इस प्रकार वादीके द्वारा अनुमान कहा जानेपर पहिलेकी ही तरह सामान्यके साथ अनेकान्तिक दोष हेतुमें उद्भावित करनेपर वह प्रतिज्ञाका त्याग करता है अर्थात् यों बोल पड़ता है कि इस तरह कौन कहता है कि शब्द अनित्य है तो यह प्रतिज्ञासन्यास हो गया । जो प्रतिज्ञा की थी, जो साध्य सिद्ध किया जाना था उसका ही परित्याग कर दिया गया । उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तो ठीक है कि अनेकान्तिक हेत्वाभास बोल करके साध्यको सिद्ध करना मिथ्या ही अनुमान है, इस कारणसे उसे हेत्वाभाससे दूषित कहकर मिथ्या कहना चाहिए । अब हेत्वाभाससे मिथ्या प्रतीत हो जानेपर उस विषयमें अन्य प्रकारके वचनों दोषकी परिकल्पना करना व्यर्थ है । साथ ही यह भी बात देखिये कि प्रतिज्ञासंन्यास भी प्रतिज्ञाहानिसे कोई भिन्न चीज तो न रही, क्योंकि हेतुमें जब अनेकान्तिक दोष पाया गया तो यहांपर भी प्रतिज्ञाका ही परित्याग हुआ । तो प्रतिज्ञाहानिसे कोई विशे-

Version 1

षता न होनेके कारण अर्थात् जैसे प्रतिज्ञाहानिमें प्रतिज्ञाका परित्याग हुआ था इसी तरह प्रतिज्ञासंन्यासमें भी प्रतिज्ञाका परित्याग हुआ है। अतएव यह प्रतिज्ञासंन्यास नामक निग्रहस्थान प्रतिज्ञाहानिसे कोई अलग स्वरूप नहीं रखता।

हेत्वन्तर निग्रह स्थानका उद्भावन—५ वाँ निग्रह स्थान बताया गया है, हेत्वंतर। हेत्वन्तरका न्यायसूत्रमें इस प्रकार लक्षण किया गया है कि सामान्यतया कहे गए हेतुके प्रतिसिद्ध हो जानेपर विशेषता हेतुको चाहने वाले, जाहिर करने वाले वादी के हेत्वन्तर नामक निग्रह स्थान होता है। इसका उदाहरण यह है कि जैसे वादीने अनुमान किया कि यह सब व्यक्त जो कुछ दुनियामें दिख रहा है वह भी सब एक प्रकृति वाला है क्योंकि विकारका परिमाण होनेसे। जैसे मृत पूर्वक घट सकोरा डबला आदिककी तरह। अब यहाँपर वादीके द्वारा कहे गये हुए अनुमानमें व्यभिचार दिखा कर दूषण दिया गया प्रतिवादीके द्वारा कि देखिये परिमाण तो नाना प्रकृति वाले पदार्थोंका भी देखा जाता है और एक प्रकृति वाले पदार्थोंका भी देखा जाता है। जैसे घट पट लोह स्वर्णादिक ये एक प्रकृतिमें नहीं हैं उनमें भी परिमाण देखा जाता है। वह भी लम्बाई चौड़ाई आदिकमें अपना परिमाण रखता है। तो यहाँ जो हेतु दिया गया कि विकारका परिमाण होनेसे और साध्य सिद्ध किया गया कि एक प्रकृति वाला तो विकारको परिमाण होनेपर भी वे सब परिमाण वाले एक प्रकृतिमें तो नहीं होते हैं। तो यहाँ हेतु अब सही हेतु न रहा। हेतुमें अनैकान्तिक दोष भी आया। इस प्रकार हेतुका अहेतुपना निश्चय करके यह वादी कहता है कि नहीं, नहीं। कोई हेतु इस प्रकार है कि एक कारणसे अनुस्यूत होकर विकारोंका परिमाण होनेसे तो एक कारण जैसे मिट्टी है उससें अनुस्यूत होकर जितने विकार होंगे, घट सकोरा आदिक जितने भी पर्याय होंगे उनका परिमाण है, और वे एक प्रकृति वाले हो गए तो इस प्रकार जब वादी सामान्यतया कहे गए हेतुमें दोष निरखनेपर उस हेतुमें विशेषण और लगा देते हैं, विशेष हेतुको जाहिर करता है तो उस समय हेतुमें विशेषता कहने वाले वादीके हेत्वन्तर नामका निग्रह स्थान हो जाता है।

हेत्वन्तर निग्रह स्थानकी मीमांसा—अब उक्त समस्याके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह हेत्वन्तर नामका निग्रह स्थान अलगसे बनाना असंगत है, क्योंकि हेतु में विशेषता और जोड़कर हेत्वन्तर नामक निग्रह स्थानको बनानेपर यदि किसीने सामान्यतया दृष्टान्त दिया और उसमें दूषण आया तो वहाँ भी दृष्टान्तमें कोई और विशेषण लगाकर उपस्थित करे तो फिर वह दृष्टान्तान्तर नामका निग्रह स्थान मान लिया जाय अथवा उपनय निगमनमें भी किसीने दूषण दिया तो उस समय वहाँ भी कोई विशेषता लगा दे तो उपनयान्तर निगमनान्तर नामके भी निग्रह स्थान बन बैठेंगे और इस आक्षेपमें यदि कोई प्रतिवादी कोई समाधान देता है तो जो समाधान इसमें दिया जायगा वही समाधान हेत्वन्तरमें भी घटित हो जायगा, इस कारण हेत्वन्तर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नामका निग्रह स्थान अलगसे बताना युक्तिसंगत नहीं बैठता।

अर्थान्तर निग्रह स्थानका यौगसिद्धान्तमें निर्देश—छठवाँ निग्रह स्थान बताया गया है अर्थान्तर। इसका लक्षण न्यायसूत्रमें इस प्रकार कहा गया है कि प्रकृत अर्थकी अप्रतिपत्ति अन्य अर्थ वाले वचन बोलना अर्थान्तर निग्रह स्थान है, जिसका स्पष्ट भाव यह है कि जिस प्रमेयकी बात कही जा रही है उस प्रकृत प्रमेयमें अनुपयोगी वचन बोलना उसे अर्थान्तर नामक निग्रह स्थान कहते हैं। पक्ष और प्रतिपक्ष का परिग्रह होनेपर जिसका कि लक्षण पहिले कह दिया है कि एक अधिकरण वाला वस्तु धर्म पक्ष प्रतिपक्ष कहलाता है आदि। तो उनका परिग्रह होनेपर हेतुके द्वारा जब साध्यकी सिद्धि बनायी जा रही है तो उस प्रकृत साध्यमें प्रकृत हेतुको जब वादी यों निरखता है कि प्रमाणके सामर्थ्यसे मैं इस हेतुको समर्थित करनेके लिए असमर्थ हूँ। ऐसा निश्चय करता हुआ वादी वादको तो छोड़ता नहीं, वादको तो समाप्त करता नहीं और अर्थान्तरसे उपस्थित करता है अर्थात् प्रकृत अर्थको छोड़करके अन्य अर्थको बोल देता है तब वह अर्थान्तर नामका निग्रह स्थान होता है। जैसे यह कह दिया कि शब्द नित्य है अस्पर्शवान होनेसे। और फिर अन्य-अन्य शब्दोंकी व्याख्या करने लगा। देखो हेतु किसे कहते हैं? हेतु कैसे व्युत्पन्न हुआ है? हिनोति धातुमें तु प्रत्यय लगकर यह कृदन्त शब्द बना है और नाम समास निपात आदिक पेश करके नाम आदिककी व्याख्या देने लगा तो यह सब अर्थान्तर नामक निग्रह स्थान है। बोला तो कुछ था और उस पक्षका समर्थन करना चाहा था लेकिन जब वादी स्वयं यह समझ गया कि जो गलत बोला गया हो और हमारा हेतु इस योग्य नहीं है कि प्रतिज्ञाको सिद्ध कर सके तब वह हेतु आदिक अनेक शब्दोंकी व्युत्पत्ति अर्थ उपसर्ग निपात आदिक व्याकरण सिद्धि आदिकको बोलने लगा। तो ये प्रकृत प्रमेयमें अनुपयोगी वचन हैं और प्रकृतको छोड़कर अन्य सब बातें बोलने लगा तो इस तरह यह अर्थान्तर नामका निग्रह स्थान बन जाता है।

अर्थान्तनिग्रहस्थानकी मीमांसा – समाधानमें पूछते हैं कि यह जो अर्थान्तर नामका निग्रहस्थान बताया है वह समर्थ साधन अथवा दूषणके कहनेपर निग्रहके लिए माना गया है या या असमर्थ साधन अथवा दूषणके कहनेपर निग्रहके लिए माना गया है। अर्थात् वादी यदि समर्थ साधन या समर्थ दूषण कहता है तब उसके निग्रह करनेके लिए अर्थान्तर निग्रह बोला जाता है या वादी असमर्थ साधन या दूषण कहे तो उसके निग्रहके लिए अर्थान्तर निग्रह स्थान माना गया है। इन दोनों विकल्पोंमें पहिला विकल्प तो ठीक नहीं कहा जा सकता। समर्थ साधन बोलनेपर या समर्थ दूषण बोलनेपर या समर्थ दूषण बोलनेपर निग्रहके लिए यदि निग्रहस्थान माना है अर्थान्तर तो भला बतलावो कि अपने साध्यको सिद्ध करके फिर कोई उसपर नृत्य करे तो वह तो दोषके लिए न कहलायेगा कोई समर्थ साधन बोला गया तो वह तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध हो ही गया। अब वह दोषके लिये कैसे होगा ? यदि कहो कि असमर्थ साधन दूषण बोलनेपर भी प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि हो तब तो वह निग्रहके लिए माना जा सकता है। या बतलावो कि प्रतिपक्षकी सिद्धि न होनेपर भी क्या वह निग्रहके लिए माना जाता है ? यदि कहो कि प्रतिपक्ष सिद्ध होनेपर ही वह अर्थान्तर निग्रह माना जाता है तो प्रतिपक्षकी सिद्धिसे ही इसका निग्रह हो गया। इस निग्रह स्थानसे निग्रह माननेकी आवश्यकता न रही। यदि कहो कि प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि हुए बिना ही निग्रह हो जायगा तो जब निग्रहवादीके पक्षकी सिद्धि न हुई तो इस अर्थान्तरसे भी निग्रह नहीं हो सकता। क्योंकि इस समय अब दोनों ही वादी और प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि नहीं हो सकती।

निरर्थक निग्रहस्थानका परिचय—अब एक निग्रहस्थान है निरर्थक नाम का इसका लक्षण न्यायसूत्रमें कहा गया है कि वर्णक्रमके निर्देश वाला स्थान निरर्थक स्थान कहलाता है। जैसे शब्द अनित्य है जब गणदशपना होनेसे क ग घ ङ ध पने की तरह। यह भी कहना सर्वथा अर्थशून्य होनेसे निग्रहके लिये कल्पना की जाती है या साध्यका अनुपयोगी होनेसे कल्पना की जाती है इसमें पहिला विकल्प तो कह नहीं सकते कि अर्थशून्य होनेसे निग्रहके लिए माना जाता है क्योंकि सर्वथा अर्थशून्य शब्द ही असम्भव है वर्णक्रमका निर्देश भी उच्चारित होनेके बाद अर्थात् सिद्ध किए जाने वाले लाभसे उनमें भी अर्थवत्ता सिद्ध होती है। अब द्वितीय विकल्प कहेंगे कि अर्थात् साध्यका अनुपयोगी होनेसे निरर्थक माना जाता है तो सभी फिर निग्रहस्थान निरर्थक हो जायेंगे, क्योंकि सभी निग्रहस्थान साध्यकी सिद्धिके अनुपयोगी हैं। यह निग्रह स्थानमें वादीको चुप करके यथातथा कल्पना करके एक बात बतायी गई है। यदि कहो कि किसी भी विशेष मात्रसे इसमें भेद सिद्ध हो जायगा। तब फिर खात्कृत हस्त का अकृम्पन आदि भी साध्यकी सिद्धिमें अनुपयोगी होनेसे निग्रहस्थान बन जायगा। कोई कोई लोग वाद विवादके समय अपने कितना हाथ पैर फेंकते हैं तो यह भी एक निग्रहस्थान बन जायगा इससे निरर्थक, नामका भी निग्रह स्थान कहना युक्त नहीं है।

अविज्ञातार्थ निग्रहस्थानके परिचयमें मंदबुद्धिताकी निग्रहस्थान निर्माणमें असमर्थता—अब एक निग्रहस्थान है अविज्ञातार्थ। सभासदोंके द्वारा तीन बार भी कहनेपर यदि अर्थ अविज्ञात रहा, उसका अर्थ न जाना जा सका तो वह अविज्ञात अर्थ है अर्थात् वादी तीन बार भी कोई वाक्य बोलता है और उस वाक्यार्थको सभासद नही समझ सकता, तो वह अविज्ञात अर्थ नामका निग्रह स्थान हो जाता है। यहां इसका यह भाव है कि किसी भी मंतव्यको वादीने तीन बार बताया है, इतनेपर भी न कोई सभासद उसका अर्थ जान सके और न प्रतिवादी ही उसका अर्थ जान सके; तब उसे अविज्ञातार्थ निग्रहस्थान कहते हैं। इस सम्बन्धमें यह पूछा जाता है कि वादी ने तीन बार वाक्यको बोला और उसे सभासदोंने और प्रतिवादियोंने नहीं जान पाया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो क्या मंदबुद्धि होनेसे नही जान पाया या कोई शीघ्र–शीघ्र उच्चारण किए जानेसे नही जान पाया ? यदि कहो कि मंदबुद्धि होनेसे नही जान पाया तो जो ठीक साधन बोलता है उस साधनके सम्बन्धमें भी मंदबुद्धि होनेके कारण सभासदोंने नही जान पाया तो वह भी निग्रहस्थान बन जायगा, क्योंकि सम्यक स्थान बोला जानेपर भी परिषदके लोग मंदबुद्धि होनेसे उसे भी न जान पायें यह बात बहुत कुछ सम्भव है। इस कारण मंदबुद्धि होनेके कारण परिषदोंने वादीके कहे हुए अर्थको न जान पाया, इतने मात्रसे वह निग्रहस्थान नही कहा जा सकता।

गूढाभिधानताकी निग्रहस्थाननिर्माणमें असमर्थता—अगर कहो कि गूढ़ शब्द होनेके कारण सभासदोंने नही जान पाया तो कोई पत्र और वाक्यका प्रयोग भी हो तो उसमें भी यह बात सम्भव है कि सभासद लोग उसको नही जान सकते, क्योंकि गूढ़ शब्द होनेके कारण शुद्ध पत्र और शुद्ध वाक्यका प्रयोग होनेपर वे सभासद लोग नही जान पाये। बड़े–बड़े बुद्धिमान भी हों तो भी किसी पत्र और वाक्यके प्रयोगका अर्थ भी नही जान सकते हैं। तब गूढ़ संविधान होनेके कारण सभासदोंने नहीं जान पाया अर्थ इस कारणसे अविज्ञान अर्थ निग्रह स्थान बन जाय यह बात नही मानी जा सकती है। यदि कहो कि इन दोनोंके द्वारा न जाना जानेपर भी यहां यह वादी उस गूढ़ अर्थके गूढ़ उपन्यासको भी गूढ़ उपन्यासको भी गूढ़ शब्दके रहस्यको भी वही कहदे। अर्थात् शंकाकार यहाँ यह कह रहा है कि मानो गूढ़ शब्द होनेके कारण परिसदके लोगोंने नही जान पाया वादीका अर्थ तब फिर वादी ही स्वयं बता देवे आरामसे धैर्यके साथ कि मेरे मंतव्यको यह भाव है। अगर वह वादी नही बताता है तो उसकी जीतका अभाव ही हुआ इसपर इतना कहना ही पर्याप्त है कि इसमें वादीका निग्रह तो न हो सका, क्योंकि दूसरेके पक्षकी सिद्धि न हो सकी। दूसरेके पक्षकी सिद्धि हुए बिना निग्रह नही हो सकता है। वास्तवमें निग्रह वहाँ ही माना जा सकेगा जहाँपर दूसरे प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि हो जाय, पर अन्य वादीके पक्षकी जब सिद्धि नही हो रही है तब उसकी जीत नही हो सकती।

द्रुतोच्चारणकी निग्रह स्थान निर्माणमें असमर्थता—यदि किसीके शीघ्र शीघ्र उच्चारण करनेमें वादियोंने और सभासदोंने अर्थ नही जान पाया यदि यह पक्ष ग्रहण हुआ तो शीघ्र–शीघ्र उच्चारण करनेपर भी सभासदोंके लोगोंको ज्ञान सम्भव हो सकता है, क्योंकि वे सब सिद्धान्तके जानने वाले हैं, अर्थात् कितना ही शीघ्रवादी अपने पक्षका उच्चारण करे तिसपर भी कोई परिसदके लोग अथवा प्रतिवादी खुद समझ सकते हैं, क्योंकि वे सब दोनोंके सिद्धान्तके जानकार हैं, इस तरह यह बात नही कही जा सकती है कि सर्वथा अर्थशून्य होनेके कारण निरर्थक नामका निग्रह स्थान निग्रहके लिए माना गया है।

साध्यानुपयोगी होनेके विकल्पसे भी अविज्ञातार्थ निग्रह स्थानका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनिर्माण–यदि कहो कि साध्यका अनुपयोगी होनेके कारण निग्रह स्थान माना जाता है तो साध्यके अनुपयोगकावादमें प्रलापमात्र होनेपर दोनोंका अज्ञान सिद्ध होता है। तो उन दोनोंका अज्ञान अविज्ञातार्थ नही हुआ, किन्तु वर्णक्रम निर्देशकी तरह निरर्थक नाममें ही निग्रह स्थान बना, इस कारण यह कहना ठीक नही है कि अनिज्ञतार्थ नाम का निग्रह स्थान निग्रहसे कोई भिन्न निग्रह स्थान निग्रहसे कोई भिन्न निग्रह स्थान है, यह भी निरर्थक नामके निग्रहस्थानमें ही अन्तर्भूत हो जाता है, इस कारण अविज्ञातार्थ नामका निगृहस्थान कोई जुदा कल्पना करना युक्त नही है, क्योंकि जब वादीके कहे हुए मंतव्यका परिषदके लोग अथवा प्रतिवादी नहीं समझ सके तब वह निरर्थक ही तो रहा। तो जैसे वर्णक्रमका को भी शब्द बोला जाय उसका कोई अर्थ नही है। जैसे स्वरोंका कोई प्रयोग करे, १६ स्वर लगातार बोले, ३३ व्यञ्जन लगाकर बोले, तो बोल गया, अब उसका अर्थ क्या ? किसीने क ख ग घ ङ ऐसा कहा तो इसका क्या अर्थ ? तो जैसे कार्यक्रमके निर्देशनमें निगृहपनका स्थान बताया था और वह निरर्थक था इसी तरह यहाँ भी निरर्थक नामका निगृहस्थान मानलो। सो अविज्ञात अर्थ नाम का कोई निगृहस्थान न बन सका। जैसे कि निरर्थक निगृहस्थान भी ठीक न था, इस प्रकार यह अविज्ञातार्थ नामका निगृहस्थान भी कोई उचित नही है। यह भी एक मिथ्यावाद है। और केवल वादाको चुप करनेके लिए ही एक दूषण लगाया है। अगर वादीका अभिप्राय कोई नही जान सकता है तो उसे पुन: पूछना चाहिये, उस को समझना चाहिए। पर इतने मात्रसे उसका निगृह यों न होगा कि इससे कोई प्रतिवादीका पक्ष तो सिद्ध नही हो गया। यदि प्रतिवादीका मंतव्य सिद्ध हो जाय तो निगृहस्थान माना जा सकता है।

अपार्थक निग्रहस्थानका परिचय एक अपार्थक नामका निग्रह स्थान है। इसका लक्षण न्यायसूत्रमें यों बताया है कि पूर्वापर योगसे अप्रतिसम्बद्ध अर्थ कहना सो अपार्थक है। जिसका भाव यह है कि जो पूर्वापर असंगत हो ऐसे पद समूहके उच्चारण करनेसे जिसका वाक्यार्थ अप्रतिष्ठित है उसको अपार्थक नामक निग्रह स्थान कहते हैं। जैसे १० अनार हैं ६ अपूप हैं आदिक असम्बद्ध अर्थवाले वचन बोलना इसे अपार्थक कहते हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह अपार्थक नामका निग्रह स्थान भी निरर्थक नामका निगृहस्थानसे भिन्न नही है। जैसे कि ज ब ग ड़ द स या अ य प्रकारसे क ख ग घ ङ आदिक किसी भी प्रकार वर्णादिक बोलना अर्थशून्य है। इसका क्या अर्थ ? केवल एक शब्दके उच्चारण मात्र है। तो जैसे यों वर्णक्रमका निर्देश निरर्थक है इसी प्रकार यह अपार्थक नामका निगृह स्थान भी निरर्थक ही है। उससे भिन्न कुछ नही है।

अपार्थकके विचारमें पदनैरर्थक्य वाक्यनैरर्थक्य आदिकी समस्यायें– यदि यह कहो कि फिर तो पदनैरर्थक्य वर्णनैरर्थक्यसे भिन्न होनेके कारण वह भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निग्रहस्थान मान लिया जाता है तो फिर वाक्यनैरर्थक्य भी तो वर्णनैरर्थक्य और पदनैरर्थक्यसे भिन्न है। इसलिए एक वर्णनैरर्थक्य नामका भी निग्रहस्थान मान लेना चाहिए क्योंकि जैसे पद नाना प्रकारसे प्रयोगमें आते हैं पूर्वापर रूपसे प्रयोगमें आते इसी प्रकार वाक्य भी पूर्वापर रूपसे नाना प्रकार प्रयोगमें आते हैं। तो वाक्य नैरर्थक नामका भी निग्रहस्थान मानना पड़ेगा जैसे एक वाक्यमें पदोंका पूर्वापर एक रूढ़ कारक पद्धतिसे रख दिया जाता है इसी प्रकार किसी वाक्योंमें यदि वाक्योंको भी उसक्रमसे न रखकर भिन्न भिन्न रूपसे रख दिया जाय तो वाक्य नैरर्थक्य नामका भी निगृह स्थान बन जायगा। जैसे कि किन्हीं किन्हीं काव्योंमें बताया है कि शंख कदली है, कदली भेरीमें है और भेरीमें बहुतसे विमान हैं। और यों वे शंख भेरी कदली और विमान उन्मत्त गंगा वाले प्रदेशकी तरह सब, हो गए थे तो इस कवितामें कौन सा वाक्य पहिले कहें कौनसा बादमें कहें, इसकी अपेक्षा न करके वाक्य तो सब रख दिये किन्तु पूर्वापर क्रमके बिना पद रख दिया जाय तो पदनैरर्थक्य हुआ। पूर्वापर क्रमके बिना वर्ण रख दिया जाय तो वर्णनैरर्थक्य हुआ। यों ही पूर्वापर क्रमके बिना वाक्य रख दिया जाय तो वह वाक्य नैरर्थक्य हुआ। तो निग्रहस्थान भिन्न–भिन्न अनेक हो जावेंगे एक वाक्य नैरर्थक्य भी बता देना चाहिए। यदि यह कहो कि पद नैरर्थक्यको ही वाक्य नैरर्थक्य कहते है, क्योंकि वाक्य होता है पदोंके समुदाय रूप। जब पदोंमें निरर्थकता आयी तो वाक्य निरर्थकता भी बन गयी। इस तरह वाक्य निरर्थकता भी बन गयी। इस तरह वाक्य निरर्थक नामका निग्रह स्थान अलगसे बनानेकी आवश्यकता नही पड़ी। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह तो वर्णकी निरर्थकताको ही पद निरर्थक मान लो। क्योंकि जो भी पद होता है वह वर्णोंके समुदाय रूप हुआ करता है। इस तरह पद निरर्थकता की भी कल्पना न करना चाहिए। यदि यह कहो कि पद और वाक्यमें सभी जगह वर्णोंकी निरर्थकता होनेसे पदके भी निरर्थकताका प्रसंग आ जायगा। फिर तो पदकी भी निरर्थकता होनेसे पदके समुदाय रूप उस वाक्यमें भी निरर्थकताका अनुषंग हो जायगा। इससे निग्रह स्थानोंमें जरा–जरासे भेद करके अपने अभिप्रायसे भिन्न भिन्न मान लेना यह युक्तिसंगत नही है। इस तरह तो सर्व प्रकारके निग्रह स्थानोंका प्रथम बताये गए निग्रहस्थानमें अन्तर्भाव नही हो सकता। और, स्पष्ट बात तो यह है कि जितने भी ये निग्रहस्थान कहे जा रहे हैं ये सभ्यताकी सीमासे बहिर्गत हैं। हेत्वाभास पक्षाभास आदिकके दूषण उपस्थित करके वादीके मंतव्यको दूषित घोषित कर देना वह तो वादकी सभ्यताका रूप है। और, विद्वानोंमें इस ही पद्धतिसे जय पराजयकी व्यवस्था बनती है। किस ही प्रकार वादीको निग्रहीत किया जाय, यह आशय प्रेक्षावानों आदरके योग्य नही माना गया। तो जब एक निरर्थक नामका दोष कह दिया निग्रहवादीने तो उस निरर्थकमें ही अविज्ञातार्थ अपार्थक परनैर्थक्य वाक्यनैरर्थक्य सभी कुछ दूषण एक निरर्थकतामें ही आ जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्द, पद व वाक्यमें नैरर्थक्यकी असिद्धिमें संदेह—यदि कहो कि पदके अर्थकी अपेक्षा पदमें अर्थवानपना है तब वर्णोंकी अपेक्षा, अर्थोंकी अपेक्षा वर्णोंमें भी अर्थवानपना हो तो इसमें कौन संदेहकी बात है ? प्रकृति प्रत्यय आदिक वर्णोंकी तरह जैसे कि केवल प्रकृति और प्रत्यय अथवा एक प्रकृति ही पद नही होता, केवल प्रत्यय ही पद नही होता, प्रकृति और प्रत्यय मिलकर पद होते हैं फिर भी प्रकृति और प्रत्यय न भी मिलें, ये ये जुदे-जुदे भी हों तो भी इनकी निरर्थकता नही है, क्योंकि इनका मिलकर ही तो एक अभिप्रेत व्यक्त अर्थ बना करता है। यदि कहो कि अभिव्यक्त अर्थ तो इसमें है, केवल प्रकृति बोली जाय तो उससे अर्थ तो प्रकट नही हुआ। जब तक विभक्ति सहित शब्द न हो तब तक उससे क्या अर्थ ध्वनित होता है ? देवदत्त, गाय, यों अलग-अलग प्रकृति बोल देनेसे विभक्तिरहित शब्द बोल देनेसे उनमें अर्थ तो कुछ अभिव्यक्त नही हुआ। जब-जब इसमें विभक्ति लगाई जाती है, जैसे कि देवदत्तने गाय को बाँध दिया तो 'देवदत्तने' इसका अर्थ जाहिर होगया, तो विभक्ति बिना प्रकृतिसे कोई अर्थ व्यक्त नही होता और प्रकृति बिना प्रत्ययसे विभक्तिसे कोई अर्थ व्यक्त नही होता। जैसे बोलते जावो ने को से आदि, तो इनका अर्थ क्या ? तो अभिव्यक्त अर्थ न होनेसे वर्ण निरर्थक कहलाता है। ऐसा कहा तो पद भी निरर्थक हो जायगा। जैसे केवल प्रकृति, अर्थ घोषित नही कर सकता। केवल विभक्ति किसी अर्थको घोषित नही कर सकती प्रकृतिका अर्थ प्रत्ययके द्वारा हों प्रकट होता है और प्रत्ययका अर्थ प्रकृति के द्वारा प्रकट होता है। केवल प्रकृति और केवल प्रत्ययका प्रयोग नही होता। जैसे कि देवदत्त ठहरता है। इस प्रयोगमें देवदत्तमें देवदत्तः यहाँ विभक्ति लगी है। ठहरता है तिष्ठ तमें भी विभक्ति लगी है, तो यहाँ दो पद हैं—देवदत्तः तिष्ठति। यदि कोई केवल एक ही पद बोले किसीने कहा—'तिष्ठति' अब इससे क्या अर्थ ध्वनित हुआ ? ठहरता है। कोई मतलब ही नही समझ सकता। अथवा किसीने एक ही पद बोला-देवदत्तने, तो इतनेसे भी क्या अर्थ ध्वनित होता है ? तो केवल पदका प्रयोग करनेसे भी उसका अर्थ कोई ध्वनित नही होता। तब पदप्रयोग भी निरर्थक हो जायगा। जैसे कहा था ना कि प्रकृति और प्रत्यय यदि ये इकले-इकले ही बोले जायें प्रकृतिमें प्रत्यय लगाकर न बोला जाय तो वह निरर्थक है, इसी प्रकार पद भी निरर्थक है। वाक्य पूरा बोला जाय तब उससे अर्थ ध्वनित होता है, केवल कोई पद ही बोला जायगा तो उससे उसका कोई अर्थ ज्ञात नही होता है। यदि कहो कि पदान्तरकी अपेक्षा रखने वाले पदकी सार्थकता होती है तो यही बात यहाँ भी लगा लीजिए कि प्रकृतिकी अपेक्षा रखकर प्रत्ययकी सार्थकता होती है और प्रत्ययकी अपेक्षा रखकर प्रकृतिकी सार्थकता होती है। तात्पर्य यह है कि निरर्थक भी हो कुछ तो यों निरर्थकोंको अनेक अनेक भेदोंमें बोलनेपर व्यवस्था नही बन सकती। एक निरर्थकमें ही उन सबका अंत-र्भाव हो जायगा। जिसके बोलनेसे परिषदके लोग अथवा प्रतिवादी लोग कुछ अर्थ नही समझ सकते।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अप्राप्तकाल नामकनिग्रहस्थानकी मीमांसा–एक निगृहस्थान हैअप्राप्तकाल अप्राप्तकालका अर्थ न्यायसूत्रमें इस प्रकार किया गया है कि अवयवोंको विपरीतरूपसे कहना सो अप्राप्तकाल है। अनुमानके अवयव ५ कहे गए हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण उपनय और निगमन। और उनके कथनका भी क्रम ऐसा है कि पहिले प्रतिज्ञा कहा जाता हैं। इसके पश्चात् हेतु। इसके पश्चात् उदाहरण। फिर उपनय और निगमन, लेकिन कोई इन प्रतिज्ञा आदिक अवयवोंको। विपरीत रूपसे बोल दे। जैसे क्रम सहज है उसका उल्लंघन करके यदि अवयवोंको प्रयोग किया जाय तो उसे अप्राप्तकाल नामका निग्रह स्थान कहते हैं उत्तरमें कहते कि यह भी बात असंगत है क्यों कि बुद्धिमान ज्ञानी पुरुषोंके अवयव क्रमके नियम बिना भी अर्थकी प्रतिपत्ति देखी जाती है इस कारण कभी अवयवमें विपर्यास भी कर दिया जाय तो भी उसका अर्थ तो विद्वान लोग लगा लेते हैं। इससे अप्राप्तकालक नामका निग्रह स्थान कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं रखता। जैसे किसी पुरुषपने ऐसा ही कह दिया–देखो धूम होनेसे इस पर्वतमें अग्नि साबित होती है। तो यहां अवयवोंका विपर्यास कर दिया गया। पहिले हेतु बोला गया व पक्ष, प्रतिज्ञा पीछे लेकिन कोई इस शब्दको सुनकर स्पष्ट अर्थ यही जान पाता है क्या ?जान लेता है। तो उचित अवयवोंके विपर्यास वचन होनेपर भी वह निगृह नही बन पाता। निगृह तो यथार्थतया तब हुआ करता है जब प्रतिवादी का पक्ष सिद्ध हो जाय। और उसका उत्तर वादी कुछ न दे सके। तो वादीका निग्रह हो जायगा।

विपरीतक्रम सुनकर सत्यक्रमके स्मरणसे अर्थप्रतिपत्ति होनेकी शंका व उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि जिस प्रकार अपशब्द श्रुतसे सत्य शब्द का स्मरण हो जाता है फिर उस सत्य शब्दसे अर्थका ज्ञान हो गया यों शब्दसे ही अर्थका ज्ञान परम्परासे हो जाता है उसी प्रकार प्रतिज्ञा आदिक अवयवको विपरीत बोल देनेसे भी सुनने वालेको उसके क्रमका स्मरण हो जाता है और उससे वाक्यके अर्थका ज्ञान हो जाता है और उससे वाक्यके अर्थका ज्ञान हो जाता है। तो हुआ तो आखिर क्रमपूर्वक ज्ञानमें लेनेसे ही स्मरण और बोध। तो यहां अवयवोंके विपरीत वचनसे अर्थका ज्ञान हुआ, यह न कहना चाहिये। शंकाकारका यह भाव है कि जैसे किसीने बोल दिया कि धूम होनेसे इस पर्वतमें अग्नि है तो वादी इस प्रकार बोल तो गया, मगर सुनने वाले ने इस वाक्यको अपने ज्ञानमें इस तरहसे सम्हाल लिया है। कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। तो सुनने वालेने जो अपने ज्ञानमें वह क्रम उत्पन्न कर लिया कि तब अवयवके व्युत्क्रमसे। विपर्ययसे नही, किन्तु यथाक्रम प्रयोग रूप अन्य ज्ञानोंसे उनके वाक्यका अर्थ समझा गया है। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह से अपनी बात बनाना सारहीन है क्योंकि विद्वान लोग विपर्यास रूपसे अवयवोंका वचन सुनकर भी तत्काल ही उसके सुननेसे ही वाक्यके अर्थका ज्ञान कर लेते हैं। ऐसा नही देखा गया कि किसीने तो विपर्यास रूपसे अवयवोंका वचन बोला और

Version 1

उसे सुनने वालेने अपने हृदयमें क्रम सम्हाला, और उसे क्रम पूर्वक लगाया तब ज्ञान किया। ऐसी प्रतीति नही होती जिस ही उच्चारण किए गए शब्दसे जिस ही अर्थकी प्रतीति होती है वह ही उसका वाचक है अन्य नही, अन्यथा अर्थात् उच्चारण किया जाय शब्द कुछ और कोई किसी दूसरे अर्थकी प्रतीति कर बैठे याने अन्य अर्थका वाचक उसे बना डाले तो शब्दसे और उसके क्रमसे अप शब्दमें उसका व्युत्क्रममें स्मरण हो बैठे तो स्मृत अप शब्दसे अथवा अस्मृतमें क्रमसे भी अर्थकी प्रतीति हो जायगी। तब यह भी कहा जा सकता है, जैसे कि शंकाकारने यह बात रखी थी कि कोई यदि क्रमका उल्लंघन करके विपर्यय रूपसे भी शब्दोंको रखकर अवयवोंको रखकर बोल दे तो उस बोलको सुनकर दूसरा उसके क्रमका स्मरण करता है और अपने में उसके क्रम पूर्वक योजना बनाता है। फिर उसको ज्ञान होता है। ऐसा यदि कहते हो तो इसके विरोधमें यह भी कहा जा सकता कि जिसको विपर्यासका भी ज्ञान है और सुगम क्रम वाले वाक्योंको सुना, जैसा अवयवोंका क्रम कहना चाहिये उस क्रमसे अवयवोंका प्रयोग सुना तो उसे सुनकर झट वह विपरीत क्रम लगा ले और फिर अर्थको जाने तो यहाँ विपरीत क्रमसे वह अर्थकी प्रतीति करने लगा ऐसा भी तो कहा जा सकता है।

श्रुत शब्दसे अपशब्दके स्मरण द्वारा अर्थ प्रत्यय प्रसंगकी आपत्ति दूर करनेका प्रयास और उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि इस तरह तो जब शब्द आदिकसे अप शब्द आदिकके स्मरणका क्रम हो जानेसे ज्ञान किया जाने लगा तो शब्द आदिकका आख्यान करना व्यर्थ हो जायगा। अर्थात् कभी कभी समझानेके लिए शब्दोंका बारबार भाषण किया जाता है, समझाया जाता है, बोला जाता है। अब विपरीत शब्दसे भी ज्ञान होता, उस सुगम क्रम वाले शब्दसे भी ज्ञान होता, हर तरह से ज्ञान होने लगा तो शब्द सुनकर अप शब्दका ज्ञान करे कोई अप शब्द सुनकर शब्द का ज्ञान करे कोई तो जब हर तरहसे ज्ञान हो जाने लगा याने किसीके बोलनेका कुछ महत्त्व न रहा कि जो जैसा बोले उसका वैसा ही बोल सुनकर ज्ञान कर लिया जाय, जब बोलने वालेके शब्दोंके अनुसार सुनने वाले शब्दोंका ज्ञान नही करता है तब कभी कभी किन्ही किन्ही शब्दोंका जो अन्वाख्यान कराया जाता, बारबार भाषण कराया जाता या बोलने वाला बारबार शब्दोंको बोलता है जब तक कि दूसरे लोग समझ न सकें, तो दूसरेको समझनेके लिए जो पुन: पुन: कथन करनेकी बात चलती है वह फिर व्यर्थ हो जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कहने वाले खुद अपने आपके अनिष्ट मंतव्यको सिद्धकर रहे हैं अपशब्द होनेपर भी अन्वाख्यानकी उपलब्धि होनेसे। संस्कृत अर्थात् सम्हाले गए शब्दसे जो कि सत्व-रूप है, उससे धर्म होता है, और संस्कृत शब्द से धर्म होता है ऐसा नियम बनानेपर फिर अन्य धर्म अधर्मकी बातका अनुष्ठान करना व्यर्थ हो जायगा। पूजा, अध्यापन, योग आदि सब व्यर्थ हो जावेंगे। कोई मंतव्य ऐसे हैं कि जो केवल वचन व्यवहारकी उचितरूपता समझ जानेपर धर्म मानते हैं और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसके विपरीतमें अधर्म मानते हैं तो इससे फिर अन्य बातोंके उपायका अनुष्ठान करना व्यर्थ हो जायगा और धर्म और अधर्ममें अप्रतिनियमता हो जायगी, क्योंकि अधार्मिक पुरुषमें भी संस्कृत याने सम्हले हुए शब्द बोलनेका सामर्थ्य पाया जाता है, और धार्मिक पुरुषमें भी संस्कृत शब्दके बोलनेका स्मरण पाया जाता है तो इसमें धर्म अधर्मकी व्यवस्था नही बन सकती। अथवा हो उस क्रमसे अर्थ प्रतीति। तो भी अर्थका ज्ञान क्रमसे ही हुआ करता है। जिस वाक्यसे अर्थ प्रत्यय विपरीत बन जाय, अतिक्रान्त हो जाय वह निरर्थक कहलायेगा। अप्राप्तकाल निरर्थक नही कहलाता। जिससे विपरीत अर्थ ध्वनित हो वह वचन अप्राप्तकाल कहलाता है। अवयवोंसे विपर्यासरूपसे वचन हो तो उसे अप्राप्तकाल नही कहते हैं।

पुनरुक्तनामक निग्रह स्थानकी मीमांसा—एक निग्रह स्थान है पुनरुक्त नामका। जिसका लक्षण न्यायसूत्रमें इस प्रकार किया गया है कि शब्द और अर्थका जो पुन: कथन करना है उसे पुनरुक्त निग्रह स्थान कहते हैं केवल अनुवादको छोड़कर। अर्थात् अनुवादमें तो दुबारा कहा ही जाता है। दूसरी भाषामें कहा तो उस अनुवादके अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थानपर, किसी भी अवसरपर शब्दको दुबारा कहना अथवा उस अर्थको दुबारा कहना सो पुनरुक्त निग्रह स्थान है। इस सम्बन्धमें समाधान रूपमें इतना ही कथन पर्याप्त है कि अर्थका पुनरुक्त ही वास्तवमें पुनरुक्त कहलाता है। शब्द दुबारा बोल दिया जाय उससे पुनरुक्त निग्रह स्थान नही बनता इसका कारण यह है कि यदि शब्द वे ही दुबारा बोले जायें, लेकिन उनसे अर्थ भेद ज्ञात हो तो पुनरुक्त दोष नही होता, शब्दकी समानता होनेपर भी पुनरुक्त नही कहलाता, क्योंकि वहाँ अर्थ भेद हो सकता है। जैसे कि काव्योंमें वर्णन आता है कि स्वामिनि हसति हसति, यद्यपि ये हसति के दो बार प्रयोग हुए हैं लेकिन अर्थ इनका जुदा है. स्वामीके हँसनेपर हँसता है किसी सेवककी आज्ञाकारिताका वर्णन किसी काव्यकारने किया तो उसमें वह कहता है कि स्वामीके हँसनेपर तो हँसता है, तो यहाँ दो हसति शब्द आये, लेकिन इनका अर्थ भिन्न भिन्न है। तो शब्द दुबारा कहे जानेपर भी चूँकि अर्थ न्यारा न्यारा है तो यह पुनरुक्त निग्रह नही बन सकता। वही कवि फिर कहता है कि स्वामीके अधिक रोनेपर वह अधिक रोता है। स्वामिनि उच्चैरुदति स: अति रोदति, तो यद्यपि रुदति शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है लेकिन अर्थ भिन्न भिन्न हैं, इस कारण यहाँ पुनरुक्त स्थान तो नही हो सकता है। अनेक उदाहरण मिलेंगे। स्वामिनि धावति धावति। स्वामी की विशिष्ट दौड़में यह भी दौड़ता है। निन्दति निन्दति स्वामी यदि किसी गुणी और निर्दोष पुरुषकी निन्दा करता है तो यह भी निन्दा करता है। आदिक वाक्योंमें शब्दके दुबारा प्रयोग होनेपर भी चूँकि अर्थ भिन्न है तो इसमें पुनरुक्त निग्रह स्थान नही बनता तो जब शब्दको बारबार बोल देनेमें पुनरुक्त निग्रह स्थान उत्पन्न नही होता. तब यह ही मानना चाहिए कि अपने इष्ट अर्थके वाचक उन शब्दोंके द्वारा अथवा अन्य शब्दों के द्वारा सत्य ही प्रतिपादन किया जाता है, और, उन प्रतिपादक शब्दोंको कहनेके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बाद एक बार अथवा बारबार जो बोलता है उसे निरर्थक तो कह सकते हैं, पर पुनरुक्त नामक निग्रह स्थान नही कह सकते, क्योंकि उसमें इष्ट अर्थके विशेष बतानेका प्रयोजन है।

पुनरुक्तपना होनेसे निग्रहस्थानकी सिद्धिका अभाव—अभी जो वादन्याय वाक्यके उदाहरण दिए गए हैं उनमें अर्थभेद बताया गया है। किन्हीं वाक्योंमें यदि अर्थभेद न भी हो और अपने इष्ट अभिप्रायको बड़े जोरसे बतानेका प्रयोजन हो और उन्हीं–उन्हीं शब्दोंका कई बार प्रयोग किया जाय तो उन्हें कभी निरर्थक तो चाहे कह देंगे, पर पुनरुक्त नामक निग्रहस्थानसे कहनेकी जरूरत नही है। जो भी अर्थसे आपन्न है, परिज्ञात है उसका उस ही शब्दमें पुनः वचन कहना पुनरुक्त कहा गया है। जैसे किसीने अनुमान किया कि जो उत्पन्न धर्म वाला है वह अनित्य होता है, ऐसा कहकर यद्यपि इस कहनेसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है जो कि बात अभी आगे कहेंगे, लेकिन पुनः इस तरह कहना कि जो अनुपपत्ति धर्म वाला है वह नित्य होता है अथवा जो नित्य होता है वह उत्पन्न धर्म वाला नही होता, ऐसा सिद्ध हो गया। फिर भी जाने हुए अर्थका प्रतिपादन करनेके कारण वह व्यर्थ हो जाता है इस कारण निग्रहस्थान बन गया। पुनरुक्त होनेके कारण निग्रहस्थान नही होता। और, इस प्रकार यह पुनरुक्त नामक दोष भी निरर्थकमें ही शामिल होता है। निरर्थकसे अलग कोई पुनरुक्त नामका दोष नही होता।

प्रमाण और प्रमाणाभासके निर्णयसे ही जय पराजय व्यवस्था—यहाँ मुख्य प्रकरण यह चल रहा है कि आश्रय करने वाले वादी और प्रतिवादी सभाके बीचमें सभापतिकी उपस्थितिमें अपना अपना मंतव्य रख रहे हैं तो उनकी जीतहार किस माध्यमपर होती है। जीतहारका माध्यम तो जैन शासनमें यह बताया है कि जो समर्थ वचन बोल सके, प्रमाणसिद्ध वचन बोल सके तो उसकी तो जीत है और जो प्रमाणाभासका वचन बोले, असमर्थ वचन बोले, जिसमें हेत्वाभास आदिक दूषण आयें तो उसकी पराजय है। लेकिन इस जय पपाजयका भी अर्थ इतना ही है कि दुनियाको यह ध्यानमें आए कि वस्तुस्वरूप यह है और इस मार्गमें चलनेसे आत्म कल्याण होता है। कहीं लोकमें अपना बड़प्पन लुटानेके लिए जीतका अर्थ नही है। इसके विरुद्ध योग सिद्धान्तमें यह प्रतिपादन किया है कि जय और पराजयका कारण छल, जाति, निग्रहस्थान, जल्प और वितंडा ये ५ तत्व हैं, और १६ तत्व कहकर इन को सामिल किया गया है। लेकिन दूसरेका मुंह बंद करनेके लिए अथवा सभामें ताली पिटानेके लिए छल, जाति, निग्रह स्थान आदि वाले वचन बोल करके उसकी हार करा देवे तो भले ही नासमझ लोग उसकी हार जान लें। जो बुद्धिमान लोग हैं वे तो सयुक्तिक समर्थ वचन देखकर ही जय पराजयकी व्यवस्था करेंगे। यहाँ कुछ निग्रहस्थानोंके भेदके प्रसंगमें पुनरुक्त नामका निग्रह स्थान कहा जा रहा है। जो वचन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बारबार कहा जाय, जो मतलब बारबार कहा जाय उसे पुनरुक्त कहते हैं, इसमें भी यह अन्तर है कि शब्द यदि बारबार भी कहा जाय लेकिन मतलब जुदे-जुदे प्रकट हों तो वहाँ पुनरुक्त दोष नही होता और, किसी जगह यदि शब्द भी बारबार हो, मतलब भी बारबार हो और चाहे शब्द भी भिन्न भिन्न हो लेकिन मतलब वहीका वही निकले तो वह सब निरर्थकमें सामिल होता है। ऐसा पुनरुक्त भी निरर्थक ही कहलाता है। तो एक निरर्थक नामका स्थान बतानेके बाद फिर पुनरुक्त, अप्राप्तिकाल, अपार्थक अविज्ञातार्थ आदिक निग्रहस्थान बताना व्यर्थ है, क्योंकि इन सबका निरर्थक नामके निग्रह स्थानमें ही अन्तर्भाव हो जाता है।

अननुभाषण निग्रहस्थानकी मीमांसा— एक निग्रहस्थान है अननुभाषण। अननुभाषणका न्यायसूत्रमें यह अर्थ किया है कि वादीने कोई बात तीन बार कही तिस पर परिषदके लोग तो मतलब जान गए किन्तु प्रतिवादी उसका प्रत्युच्चारण नहीं करता है। जब एक वादी कुछ अपना मंतव्य रख रहा है, चाहे वह सत्य हो चाहे असत्य हो, परिषदके लोग भी सब उसका मतलब जान गए तिसपर भी उसके बारेमें प्रतिवादी यदि कुछ भी नही कहता तो यह अननुभाषण नामका दोष है। कारण यह है कि प्रतिवादी यदि वादीकी कही हुई बातका प्रत्युच्चारण नही करता है तो किस आश्रयसे फिर यह वादीके पक्षका निषेध करे। इस तरह अननुभाषण नामका निग्रह स्थान बताया गया है। इसके समाधानमें दो विकल्प पूछे जा रहे हैं—अननुभाषणका क्या यह मतलब लगाया जा रहा है कि वादीने जितना जो कुछ कहा है सबके सबका अप्रत्युच्चारण होना अर्थात् प्रतिवादीके द्वारा न कहना क्या अननुभाषणका यह मतलब है? या वादीके कहे हुए उन वचनोंमेंसे जिस वचनके प्रत्युच्चारण किये बिना प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि नही हो सकती, क्या उसको प्रतिरूप करके उच्चारण न करना यह अननुभाषणका अभिप्राय है? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि प्रथम विकल्प कहोगे कि वादीके द्वारा कहे हुए समस्त वचनोंका प्रत्युच्चारण न करना सो अननुभाषण है, सो यह कथा करना अयुक्त है, क्योंकि वादीके द्वारा कहे हुए समस्त वचनोंका प्रत्युच्चारण भी करे वादी तो भी उसका दूषण बतानेमें उसे बाधा नहीं आती। वादीने कितना भी कहा हो, जितना अंश दूषण देने लायक है उतने ही अंशका प्रत्युच्चारण करके प्रतिवादी दूषण उपस्थित करता है तो उसमें दूषण वचन सिद्ध हो जाता है।

उदाहरणपूर्वक अननुभाषण निग्रहस्थानकी व्यर्थताका कथन—जैसे कि वादीने यह अनुमान किया कि समस्त पदार्थ अनित्य हैं। सत्त्व होनेसे। इतना वादीके द्वारा कहा जानेपर प्रतिवादी केवल इतना ही कहता है कि सत्त्व होनेसे यह हेतु विरुद्ध है। अब सभामें बैठने वाले सभी विवेकी समझ गए इतना ही सुन कर कि जो सत्त्व हेतु है वह सदोष हेतु बताया जा रहा है। क्या जो जो चीजें होती हैं वे सब अनित्य होती है? यह व्याप्ति है क्या? सत् होने वाले पदार्थमेंसे कुछ पदार्थ प्रधानतम होते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं और कुछ पदार्थ अनित्य होते हैं। तो इसमें ही विरुद्धता सब लोग समझ गए, क्योंकि जो क्षणिकवादका एकान्त है उसमें सर्वथा अर्थक्रियाका विरोध है। यदि कोई पदार्थ क्षण क्षणमें ही नष्ट हो रहा है तो उससे कोई काम नही चल सकता है। उत्पन्न हो पहिले समयमें और दूसरे समयमें रहे ही नहीं ऐसा क्षणिकवादी लोग आत्माको क्षणिक मानते हैं। जिस आत्माने पापकर्म किया वह करते करते ही नष्ट हो गया, फल भोगनेको दूसरा आत्मा आता है। तो वह व्यवस्था कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। तो क्षणिकवादमें अर्थक्रिया नहीं बनती। इस कारण अनित्य मानने पर सत्वकी सिद्धि नही होती है। जो सदभूत हो वह सर्वथा अनित्य हो यह बात असंगत है। वह नित्यानित्यात्मक है। द्रव्यदृष्टिसे तो सदा रहने वाला है। अतएव नित्य है। पर्यायदृष्टिसे चूंकि पर्याय बदलती रहती है अतएव अनित्य है। तो वहाँ जो अनुमान किसी वादीने दिया था कि सब अनित्य है सत्व होनेसे तो इसमें केवल सत्वको ही विरुद्ध कहकर प्रतिवादीने खण्डित कर दिया तो वादीने जितना कुछ कहा था, सारा तो नही प्रतिवादीने उच्चरित किया लेकिन फिर भी दूषण वचन सिद्ध हो गया। तब यह विकल्प कि वादीके द्वारा जितना जो कुछ कहा गया, सारा का सारा प्रत्युच्चारण करे प्रतिवादी तो ठीक, और न करे तो अननुभाषण नामका दोष है. यह बात युक्ति संगत नही बनी, क्योंकि थोड़े ही शब्दमात्रसे जितना कि दोष देनेके लिए समर्थ है उसका उच्चारण करके ही प्रतिवादीने दूषण समर्थित कर दिया है। तब तो दूसरे विकल्पकी पुष्टि होती है कि जिससे शब्दको सदोष बतानेसे प्रतिवादीका मंतव्य खण्डित होता है इतनेसे ही प्रतिवादी प्रत्युच्चारण न करे तो अननुभाषण दोष है, यह बात फिर मान लेना चाहिए। और, जब इस प्रकारका दूषण देनेके लिए वह असमर्थ है तो इसका मतलब यह है कि प्रतिवादीको शास्त्रोंके मतलब का परिज्ञान नहीं है। और, उस समय फिर यह दोष क्या है? उत्तरकी अप्रतिपत्ति ही बनी। और, उसीसे ही दूषण आया किन्तु अननुभाषणके कारण नहीं आया। इस तरह अननुभाषण नामका निग्रहस्थान भी प्रतिष्ठासे प्राप्त नही होता।

अज्ञाननामक निग्रहस्थानकी मीमांसा एक निग्रह स्थान बताया गया है अज्ञान नामका। इसका न्यायसूत्रमें इस प्रकार लक्षण किया गया है कि जो अविज्ञात हो उसे अज्ञान कहते हैं। इसका खुलासा यह है कि वादीने कोई अपना पक्ष उपस्थित किया और उस पक्षको परिषदके लोग तो जान गए अर्थात् सभामें बैठे हुए लोग उसका मतलब समझ गए, पर प्रतिवादी नहीं समझ सका। तो यह प्रतिवादीके लिए अज्ञान नामका निग्रह स्थान है क्योंकि मतलबको जाने बिना वह किसका निषेध कर सकेगा? कुछ बोल ही नहीं सकता। इस तरह यह अज्ञान नामका एक निग्रहस्थान बताया गया है। तो इस निग्रहस्थानको भी अलग रूपसे बतानेकी बात सारहीन है। अथवा बताओ तो यह अज्ञान नामका निग्रहस्थान कहा गया है और पहिले प्रतिज्ञा हानि, प्रतिज्ञा प्रतिषेध, प्रतिज्ञा विरोध, प्रतिज्ञा संन्यास, हेत्वंतर, अर्थान्तर आदिक जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निग्रहस्थान कहे गए हैं उन सबका इस ही अज्ञानमें अन्तर्भाव हो जायगा । तो उन निग्रहस्थानोंको अलग न कहना चाहिए और यदि उन निग्रह स्थानोंको भी कहते हो, इसे भी कहते हो, तब निग्रहस्थानकी संख्याका कोई नियम नही बन सकता, फिर तो और अनेक निग्रहस्थान बनाओ । वादीने जो कुछ कहा है उसका आधा ज्ञान प्रतिवादी कर पाया, वह भी निग्रहस्थान बना, कभी कोई थोड़ा ही ज्ञान बन पाया, वह भी निग्रह स्थान बना । इस तरह उस अज्ञानके अनेक भेद होनेसे निग्रहस्थानका कुछ नियम ही नही बन सकता । वे तो मनमाने अनेक बन जायेंगे । इस तरह अज्ञान नामका निग्रहस्थान भी कोई अलग निग्रहस्थान नही है ।

अप्रतिभाव पर्यनुयोज्योपेक्षण नामक निग्रहस्थानकी मीमांसा एक निग्रहस्थान माना गया है अप्रतिभा । उत्तरके परिज्ञान न होनेको अप्रतिभा कहते हैं । ऐसा न्यायसूत्रमें कहा गया है किन्तु प्रतिभा नामक निग्रहस्थान भी अज्ञानसे कोई भिन्न स्थान नहीं है । जैसे कि अज्ञानका लक्षण कहा गया था कि जो अविज्ञात हो, जिसका ज्ञान परिषदके सदस्योंने कर भी लिया है, लेकिन प्रतिवादीको अज्ञात है उसे अज्ञान कहते हैं तो यहाँ भी यही बात कही गई है कि प्रतिवादीको उत्तरका परिज्ञान नही है । तो यों अप्रतिभा नामक निग्रह स्थान भी अज्ञानसे कुछ अलग नही है । अज्ञान ही है । एक निग्रह स्थान माना है पर्यनुयोज्योपेक्षण जिसको न्यायसूत्रमें यह लक्षण किया गया है जो वक्ता निग्रह प्राप्त है अर्थात् जिसने कुछ असमर्थ या सदोष वचन कहा जानेके कारण सभामें जिसका निग्रह कर देनेका उपयुक्त अवसर है यों यह निग्रह प्राप्त है फिर भी उसका निग्रह न कर सकना यह पर्यनुयोज्योपेक्षण नामका निग्रहस्थान है, जिसका स्पष्ट भाव यह है कि जिस वादीमें दोष प्राप्त है और फिर भी उस दोषको प्रकट न करे तो वह भी एक निग्रहस्थान है । जो पुरुष असमर्थ अथवा सदोष वचन बोल गया है उसके प्रति दूसरे वादीको यों कहना चाहिए कि यह तो तुम्हारा निग्रह स्थान है अर्थात् तुम यह सदोष अथवा असमर्थ वचन बोल गए हो । इस कारणसे तुम निगृहीत हो गए, दूषित हो गए, इस प्रकार बोलना चाहिये था । लेकिन उस अवसरमें वह न बोले और उसकी उपेक्षा करदे तो वह निग्रहको प्राप्त हो गया । जैसे कि वादीने सदोष वचन कहा । अब वादी तो समझ रहा है कि मुझसे यह कुछ असमर्थ वचन बोला गया है लेकिन उसपर प्रतिवादी कोई दोष न दे सका तो अब इस वादीको यह मौका हो गया है कि प्रतिवादीसे यह कहे कि देखो मेरे कथन में इस समय यह असमर्थता थी, यह दोष था, वह इस प्रतिवादीको बताना चाहिए था लेकिन यह न बता सका । इसलिए यही निग्रहप्राप्त है । इस प्रकारसे पर्यनुयोज्योपेक्षण नामका निग्रह स्थान बताया जा रहा है । इसीके समर्थनमें निग्रहवादियोंने यह कहा है कि यह बात जब कोई पूछे कि यहां किसकी पराजय हुई है तो ऐसा जब कोई पूछे कि यहां किसकी पराजय हुई है तो ऐसा जब परिषदसे पूछा गया तो परिषदको बोलना चाहिए कि यह इसकी पराजय हुई है, पर जिसने स्वयं सदोष वचन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोला है वह निग्रह प्राप्त है। वह जानता भी है, लेकिन अपने ही मुखसे अपनी ही पोल कैसे स्पष्ट करे। इस तरहसे यह पर्यनुयोज्योपेक्षण नामका निग्रहस्थान बताया जाता है। लेकिन यह भी अज्ञानसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसका भी अन्तर्भाव अज्ञान नामक निग्रह स्थानमें कर लेना चाहिए।

निरनुयोज्यानुयोगनामक निग्रहस्थानका आलोचन—अब एक निग्रह स्थान है निरनुयोज्यानुयोग। अर्थात् निरनुयोज्यका अनुयोग करना याने जो अनिग्रह स्थान है, दोषरहित किसीका समर्थ वचन है और उसमें निग्रहस्थानका कोई प्रयोग कर दोष रहित पुरुषोंमें दोषको प्रकट करे तो यह निरनुयोज्योपेक्षणमें तो यह बात थी कि निग्रहको प्राप्त होने वाला पुरुष है सदोष वचन बोलने वाला वक्ता है और उसके दोषको प्रकट न कर सके कोई तो उसके पर्यनुयोज्योपेक्षण निग्रह स्थान बनता है ऐसा कहा गया है इस सम्बन्धमें किन्तु निरनुयोज्यानुयोगमें यह बात बतायी गयी है कि कोई वक्ता बिना सही साधन बोलता है, उसके निर्दोष वचन है, उसका निग्रह नहीं किया जा सकता। लेकिन उसमें भी निग्रह स्थान बनाना कि यह इस दोषको प्राप्त है, इस प्रकारका प्रयोग करना यह है निरनुयोज्यानुयोग। समाधानमें कहते है कि इस निग्रह स्थानका भी अज्ञान नामक निग्रहस्थानमें अन्तर्भाव है। जैसे कि सदोषमें दोष न बता सकना अज्ञान है इसी तरह निर्दोष पुरुषमें भी दोष मानना यह भी अज्ञान है। तो यह अज्ञानसे कोई भिन्न निग्रह स्थान नही है।

विक्षेपनामक निग्रहस्थानका आलोचन—एक निग्रह स्थानका नाम है विक्षेप। जिसका लक्षण न्यायसूत्रमें इस प्रकार किया गया है कि कार्यके व्यासंगसे कथाका विच्छेद कर देना सो विक्षेप नामक निग्रहस्थान है ? कोई पुरुष कुछ अपना मन्तव्य, अपने पक्षकी बात रख रहा है और वह उस मंतव्यको उस अर्थको सिद्ध करने के प्रयत्नमें लगा हुआ है, लेकिन वह जान रहा है कि हम इसको सिद्ध करनेमें समर्थ न हो सकेंगे तो ऐसे अपने अशक्य साध्यताको जान करके समय बितानेके लिए जो करना चाहिए अथवा सिद्धिके लिए जब असमर्थ है तो वह उस कथाका विच्छेद कर देता है, अन्य बात कह बैठता है जैसे कि मुझे काम है कुछ। मेरे कामका अभी नुकसान हो रहा है मैं उससे निपट लूं। पीछे इस विषयमें कहूँगा याने किसी भी वचन द्वारा वर्तमानमें चल रहे उस विवादको, शास्त्रको कथनको खतम करदे तो वह विच्छेद नामका निग्रहस्थान है। समाधानमें कहते हैं कि यह निग्रह स्थान भी अज्ञानसे भिन्न कोई निग्रह स्थान नही है। उस पुरुषके प्रति यह कहा जा सकता कि तुम क्या दूसरे कार्यका बहाना लेते हो, तुमको खुद अपने पक्षका ज्ञान नहीं है इसलिए तुम जा रहे हो। और है भी नहीं ज्ञान। सो यह निग्रह स्थान भी अज्ञानसे कोई भिन्न निग्रह स्थान नही हैं ऐसा समझना चाहिए।

मतानुज्ञानामक निग्रहस्थानपर विचार एक निग्रह स्थानका नाम है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मतनुज्ञा। इसका अर्थ न्यायसूत्रमें इस प्रकार किया गया है कि अपने पक्षमें दोष स्वीकार कर लेनेसे परपक्षमें भी उसी दोषका प्रसंग लाना इसे मतानुज्ञा कहते हैं। जिसका स्पष्ट भाव यह है कि वक्ताने जो कुछ अपना पक्ष, मंतव्य रखा और उसमें जो वह दोषयुक्त वचन बोल गया उसका तो वह परिहार करनेमें असमर्थ है। तो परपक्ष में भी वह दूषण प्रकट करता है इसको मतानुज्ञा नामका निग्रह स्थान कहते हैं। जैसे कि वादी प्रतिवादीके द्वारा बताये गए दोषका परिहार न करके बोलता है कि आपके पक्षमें भी यह दोष समानरूपसे है इस प्रकार वह अपने पक्षमें दोष मानकर फिर परपक्षमें दोषका सम्बन्ध लगा रहा है और परमतको स्वीकार कर रहा है तब उसके मतानुज्ञा नामका निग्रह स्थान बनता है। इसके समाधानमें केवल इतना ही कहना ठीक है कि यह निग्रहस्थान भी अज्ञान नामक निग्रहस्थानसे कोई जुदा निग्रह-स्थानके कोई जुदा निग्रहस्थान नहीं है। और इस हेतुमें तो अनैकान्तिक दोष आता है। जैसे कि किसी वक्ताने एक अनुमान बनाया कि यह पुरुष चोर है पुरुष होनेसे, प्रसिद्ध चोरकी तरह। जैसे कोई प्रसिद्ध चोर पुरुष है ना इसी कारण चोर है इस प्रकार बोल दिया। अब यह अनुमान तो सही नही है, क्योंकि पुरुषत्व हेतुमें अनै-कान्तिक दोष है क्या यह व्याप्ति है कि जो जो पुरुष होते हैं वे चोर होते हैं? अचौर भी चौरत्वका प्रसंग हो गया। अनैकान्तिक दोष उसे कहते हैं कि साध्यसे विपरीत पक्षमें भी हेतु चला जाय तो अनैकांतिक दोष है तो यह पुरुषत्व हेतु अनै-कान्तिक दोषसे दूषित है। तो वक्ताने बोल तो दिया ऐसा, अब प्रतिवादी कहता है कि इसके मायने यह है कि तुम भी चोर हो। वादीसे भी प्रतिवादी कह बैठता है इस कारण यह अनैकान्तिक दोष है। इसमें कोई सन्देह नही है। अब वह वादी अपने हेतुमें अपने ही द्वारा अनैकान्तिकपना देखकर अर्थात् पुरुष मैं हू और इसी कारण मैं चोर हो जाता हूँ, ऐसा प्रतिवादीने कहा भी है। तो वादी अपने हेतुमें अपने ही द्वारा अनैकान्तपना देकर बोलता है तो यह आपके पक्षमें भी दोष समान हुआ। तुम भी पुरुष हो अतः चौर हो इस प्रकार अनैकान्तिकपनेको प्रकट करता है यह मतानुज्ञा नामका निग्रहस्थान है। समाधान यह निग्रह स्थान भी अज्ञानमें अन्तर्भूत होता है। अज्ञानसे भिन्न मतानुज्ञा नामका कोई निग्रहस्थान नहीं है।

न्यून नामक निग्रहस्थानकी मीमांसा - एक निग्रहस्थान बताया गया है न्यून नामक, जिसका लक्षण न्यायसूत्रमें यों किया गया है कि ५ अवयवोंमेंसे किसी भी अवयवकी अनुमानमें हीनता हो जाय तो वह न्यून निग्रहस्थान कहलाता है। अनुमानके अंग योगसिद्धान्तमें ५ बताये गए हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। जिस वाक्यमें प्रतिज्ञा आदिक ५ अवयवोंमेंसे कोई सा भी अवयव न हो तो वह वाक्य हीन नामका निग्रहस्थान कहा जाता है, क्योंकि ऐसा नियम है कि साधनके अभावमें साध्यकी सिद्धि नही होती, लेकिन साधन केवल हेतुका ही नाम नही है प्रतिज्ञा आदि पाँचों ही अवयव साधन कहलाते हैं क्योंकि किसी भी अनुमानकी सिद्धि तब हो पाती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है जब सब अवयवोंका प्रयोग हो लेता है। तो पाँचों ही अवयव अनुमानके साधक कहलाये और उन पाँचों अवयवोंमेंसे यदि एक भी अवयव न हो तो साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। और, कोई उन पाँचों अवयवोंमेंसे किसी अवयवको कम करदे तो वह न्यून नामका निग्रहस्थान होता है। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बात समीचीन नहीं है, क्योंकि पाँचों ही अवयवके प्रयोग बिना अर्थात् ५ अवयवोंमेंसे कोई अवयव कम हो जाय और शेष अवयवोंका प्रयोग किया जाय उससे भी साध्यकी सिद्धि होती है' ऐसा खूब विस्तारके साथ कहा जा चुका है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि प्रतिज्ञा और हेतु इन दोके कहे बिना साध्यकी सिद्धि नही हो सकती। तो प्रतिज्ञा और हेतु इन दोनोंमेंसे कोई एक कम हो तो न्यून नामक निग्रहस्थान होता है, ऐसा कहा जाय तो यह बात मानी जा सकती है। जैसे कि प्रसिद्ध अनुमान है कि इस पर्वत में अग्नि है धूम होनेसे। जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, जैसे रसोई घर। और, धूम यहाँ है इस कारण ग्नि होना चाहिए। तो इस अनुमानमें पाँचों अवयवोंका प्रयोग है लेकिन कोई इतना ही कहदे कि इस पर्वतमें अग्नि है धूप होनेसे, तो विद्वान् लोग इतनेसे ही समझ जाते हैं। कोई जरूरी न रहा कि पाँचों अवयवोंका प्रयोग किया जाय। पाँचों अवयवोंका प्रयोग शिष्योंके प्रति समझानेके लिए किया जाता है, किन्तु जहाँ सभी विवेकी बुद्धिमान लोग हों और शास्त्रार्थमें बुद्धिमानोंको ही अधिकार है तो वहां दो अवयवोंसे ही अनुमानकी सिद्धि बनती है। तो ५ अवयवोंमेंसे कोई अवयव कम हो तो उसे न्यून नामक निग्रहस्थान कहते हैं, यह युक्तिसंगत नही है।

अधिक नामक निग्रहस्थानकी मीमांसा—एक अधिक नामका निग्रहस्थान माना गया है जिसका न्यायसूत्रमें लक्षण किया गया है कि हेतु और उदाहरण अधिक बोलना सो अधिक नामका निग्रहस्थाउ है। इसका खुलासा यह है कि जिस वाक्यमें दो हेतु अथवा दो दृष्टान्त तथा इससे अधिक हेतु या दृष्टान्त बोले जायें तो वहाँ अधिक नामका निग्रह स्थान होता है। समाधानमें कहते हैं कि यह भी केवल वार्तामात्र है। जिसमें हेतु अधिक हो, दृष्टान्त अधिक हो, ऐसे भी वाक्यसे पक्षकी प्रसिद्धि ही तो होती फिर पराजय कैसे हुई ? वह निग्रहस्थान कैसे बना ? निग्रहस्थान बनता है तब जबकि अपने पक्षकी सिद्धि न हो सके या प्रतिपक्षकी सिद्धि हो जाय तो पराजय होती है। हेतु अधिक भी बोल दिया तो वह पक्षकी असिद्धि नही बल्कि प्रकृष्टरूपसे सिद्धि है। वहां पराजय नही हो सकती। और भी सुनिये ! जो पुरुष ऐसा मानते हैं कि प्रमाण अधिक बोलनेसे, हेतु अधिक बोलनेसे दृष्टान्त बोलनेसे निगहस्थान बनता है तब फिर प्रमाण संप्लव कैसे माना जा सकेगा ? प्रमाण संप्लव कहते हैं उसे कि प्रमाणके एक विषयमें प्रमाणान्तरको लगा देना सो प्रमाणसंप्लव है। और यदि प्रमाणसंप्लवको मान लेते हैं तब फिर प्रमाण संप्लवमें प्रमाण अधिक तो हो गए ना, फिर अधिक होनेके कारण निग्रहस्थान क्यों न बनेगा ? यदि निग्रहस्थानवादी यह कहे कि प्रमाणसंप्लव आदिकमें प्रतिपत्तिकी दृढ़ता होती है, सम्वादकी सिद्धि होती है, इस प्रयोजनके रहनेके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण वहां निग्रह नहीं माना जाता तो यह बात अन्य जगह भी समान है । यदि किसी मंतव्यको सिद्ध करनेके लिए दो हेतु कह दिया, दो दृष्टान्त कह दिया तो इसमें बिगाड़ क्या हुआ ? उससे तो और प्रतिपत्तिकी दृढ़ता हुई, परिज्ञानमें मजबूती आई और विषय स्पष्ट हो गया । इसलिए हेतु दृष्टान्तका अधिक प्रयोग करनेसे निग्रहस्थान नही बनता है । यद्यपि यह भी बात है कि एक ही हेतुसे अथवा एक ही दृष्टान्तसे साध्यकी सिद्धि की जाती है फिर भी दूसरा यदि हेतु या दृष्टान्त बोल दिया जाय तो वह अनर्थक नही है, क्योंकि हेतु दृष्टान्त बोलनेका प्रयोजन यह है कि जो पक्ष रखा है जो तत्त्व रखा है उसकी सिद्धि होना । तो यह प्रयोजन तो अधिक हेतु, अधिक दृष्टान्त बोलनेपर भी सिद्ध होता है । यहां यह भी नही कह सकते कि अन्य हेतु अन्य दृष्टान्त के बोलनेसे फिर और अन्य हेतु दृष्टान्तकी खोज करे और अनवस्था हो जायगी । यह दोष यों नही आता कि किसी मनुष्यको किसी जगह निराकांक्षता बनती है अर्थात् हेतु दृष्टान्तकी खोज करते-करते कहीं विराम हो जाता है । जिस मनुष्यकी जहां तक तृप्ति बनी विराम मिला वहांसे आगे फिर हेतु दृष्टान्त आदिक खोजनेकी आवश्यकता नही रहती । जैसे कि किसी बातको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण उपस्थित किया जाता है और उस प्रमाणमें प्रमाणता सिद्ध करनेके लिए अन्य प्रमाण भी उपस्थित किया जाता है, अथवा उस ही वस्तुको सिद्ध करनेके लिए ऐसे प्रमाण भी खोजे जाते हैं, लेकिन जहां सिद्धि पूर्ण हो चुकी, जिसमें कोई सन्देह नही रहा, फिर प्रमाणान्तरके खोजनकी आवश्यकता नही रहती ।

अधिकनामक निग्रहस्थानके माननेपर आपत्तियां--और भी देखिये अधिक दृष्टान्त अधिक हेतुके प्रयोग करनेसे जो निग्रहस्थान माने हैं उनके यहां तो कृतकत्वात् आदिक हेतुवोंमें स्वार्थे कः से क प्रत्यय भी वचन फिर कैसे बन सकेगा । जैसे कृत मायने भी किया हुआ जब किया हुआ अर्थ केवल कृत शब्दमें आ जाता है फिर स्वार्थेकः इस सूत्रसे इसमें क प्रत्यय लगाकर कृतक बना दे, इसकी क्या आवश्यकता है । जब किसी भी हेतुके अधिक होनेमें निग्रहस्थान मानते हो, दृष्टान्तके अधिक आ जानेसे तुम दोष मानते हो तो फिर शब्दोंमें क प्रत्यय भी नही लाना चाहिए । व्याप्ति बनाते हैं ना कि जो कृतक है वह अनित्य है तो इस व्याप्तिमें जो कृतक है वह अनित्य है तो इस व्याप्तिमें जो कृतक शब्द दिया गया है, उसमें क शब्द लगानेकी क्या जरूरत थी और लगाया तो निग्रहस्थान बन गया । तथा कोई समास वाला पद है तो समास वाले पदके प्रयोगसे अर्थका ज्ञान हो गया । अब उसको भिन्न भिन्न-करके उसकी व्युत्पत्ति बनाते हुए वाक्यका प्रयोग करना अधिक बात हुई ना तो वह भी निग्रहस्थान क्यों न हो जायगा ? अर्थात् दोष क्यों न बन जायगा ? यदि यह कहो कि भले ही वृत्ति प्रयोगसे अर्थ ज्ञात हो गया, फिर भी विशेष जानकारी करनेके उपायमें उसका खुलासा करते हैं, व्युत्पत्ति करते हैं इस कारणसे उसमें अधिक नामका दोष न आयगा । तो समाधानमें यही बात प्रकृतमें भी लगा लेना चाहिए । एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृष्टान्त देकर साध्यकी सिद्धि हो जाती है। और फिर दृष्टान्त देनेसे जानकारीमें दृढ़ता आती है। इस कारणसे अनेक हेतु अनेक दृष्टान्त बोले जाते हैं वहाँ निग्रहस्थान कैसे बन जायगा ? हां इतनी बात अवश्य है कि साध्यकी सिद्धि होनेपर और प्रतिवादी भी मान ले तिसपर भी बोलता ही जाय तो वे निरर्थक वचन कहलायेंगे, पर अधिक होनेके कारण निग्रहस्थान कहा जाय ऐसी बात नही। जब साध्यकी सिद्धि एक दो हेतुवोंसे हो गयी, फिर भी उसे बोलते जाते तो यह निरर्थक नामका दोष हो सकता है, पर अधिक नामका निग्रहस्थान नहीं कहला सकता है।

अपसिद्धान्त निग्रहस्थानका परिचय—एक निग्रहस्थान है अपसिद्धान्त नामक। सिद्धान्तको जाहिर करके फिर उसे नियमित न बना सके तब अन्य कथाका प्रसंग ला दे तो वह अपसिद्धान्त नामका निग्रहस्थान होता है। कोई वक्ता जो सिद्धान्त मानता है उसका जो आगम है, उसके विरुद्ध कोई बात सिद्ध हो जाती है तो अपसिद्धान्त नामका निग्रहस्थान होता है क्योंकि यहाँ जो वक्ताने प्रतिज्ञाकी, जिस साध्यको सिद्ध करनेका बीड़ा उठाया उसको उसने त्याग दिया। तो प्रतिज्ञात अर्थका परित्याग करनेसे यह अपसिद्धान्त भी निग्रहस्थान बन गया। जैसेकी पहिले तो यह स्वीकार किया कि शब्द नित्य हैं। शब्दोंको नित्य स्वीकार करनेके बाद फिर उन्हें अनित्य बोल बैठे तो यह अपसिद्धान्त हुआ। जो बात कह रहा था उसपर वह दृढ़ न रह सका, और उससे विचलित होकर उसके विरुद्ध चला गया तो यह अपसिद्धान्त नामक दोष न्यायसूत्रमें बताया है। लेकिन, धीरतापूर्वक विचार करें तो विदित होगा कि वह भी निग्रहस्थान कब बन सकता कि जब प्रतिवादीका प्रतिपक्ष सिद्ध हो ले। यदि अब भी प्रतिवादीका प्रतिपक्ष सिद्ध न हो तो यह कोई निग्रहस्थान नहीं बनता। निग्रहस्थान उसे कहते हैं कि कथनमें दूषण आये, कथन असमर्थ हो। यदि प्रतिवादीका मंतव्य सिद्ध होता है तो वादीका निग्रह हो जायगा, लेकिन वादी कितनी ही प्रकारसे कहे, कहीं थोड़ा दृष्टि भेदसे कुछ बदल भी दे तो भी जब तक प्रतिवादीका प्रतिपक्ष सिद्ध नहीं हो सकता तब तक वादीका निग्रह नही माना जा सकता। तो यह अपसिद्धान्त नामका दोष भी प्रतिवादीका प्रतिपक्ष सिद्ध होनेपर बनता है अन्यथा नही।

हेत्वाभासोको निग्रहस्थान माननेपर विचार—कुछ हेत्वाभास नामके भी निग्रहस्थान बताये गए हैं जिन हेत्वाभासोंका वर्णन पहिले किया गया है। न्याय सूत्रमें भी इस प्रकारका सूत्र है कि हेत्वाभास भी निग्रहस्थान होता है। वे निग्रह स्थान कौन–कौन हैं ? असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक, कालात्यापदिष्ट और प्रकरण सगो इस सम्बन्धमें भी यही कहना है कि विरुद्ध हेतुके कहे जानेपर प्रतिपक्षकी सिद्धि हो जाती है इसलिए निग्रहके आधार बनते हैं। तो इसका भाव यह हुआ कि हेत्वाभासोंके कारण विरुद्ध हेतुवोंके कारण वह निग्रहस्थान कहलाता है अन्यथा नहीं कहलाता। ये असिद्ध आदिक प्रकटके करनेपर प्रतिवादीने अपना प्रतिपक्ष सिद्ध कर लिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस कारण निग्रहस्थान बना। यदि प्रतिवादीका प्रतिपक्ष सिद्ध न होता तो वह निग्रह स्थान नहीं बनता।

असाधनाङ्गवचन व अदोषोद्भावना निग्रहस्थानका निराकरण—उक्त प्रकरणके कथनसे, निग्रहस्थानके वर्णनसे क्षणिकवादियोंके यहाँ जो अन्य प्रकारसे निग्रहस्थान बताये गए हैं जैसे असाधनाङ्गवचन और अदोषोद्भावन आदिक निग्रह-स्थान भी निराकृत हो जाते हैं। क्षणिकवादियोंका कथन यह है कि वादी यदि अपने मंतव्यको सिद्ध करने वाले अगका प्रयोग नहीं कर पाता है तो वादीका निग्रह हो जाता है और प्रतिवादी यदि वादीके कथनमें दोष नही बता सकता है तो प्रतिवादी का निग्रह हो जाता है। इस प्रकार असाधनाङ्गवचन और अदोषोद्भावना ये दो निग्रहस्थान क्षणिकवादमें कहे हैं वे भी पूर्वोक्त निग्रहके निराकरणसे निराकृत हो जाते हैं। बात यह है कि यहाँ भी अपने पक्षकी सिद्धिसे ही दूसरेका निग्रह होता है। सभी जगह यही घटित करना चाहिए कि जब भी दूसरेका निग्रह होता है तो अपने पक्षकी सिद्धिसे होता है। यदि वादीका पक्ष सिद्ध हो जाता है तो उसमें प्रति-वादीका निग्रह हुआ और यदि प्रतिवादीका मंतव्य सिद्ध हो जाता है तो वादीका निग्रह हुआ। निग्रह होनेका मूल कारण यही सिद्ध हुआ कि अपने पक्षकी सिद्धिसे ही अन्यवादीका निग्रह होता है, पर असाधनांगवचन अथवा अदोषोद्भावन ये वादी और प्रतिवादीके निग्रहके कारण नहो है। निग्रहकी जो झलक आती है वह इसी कारण आती है कि एकने अपने पक्षकी सिद्धि कर दी। एतावता ही दूसरे पक्षका निग्रह हो जाता है।

पक्षसिद्धचसिद्धिकी अवहेलना करके असाधनाङ्गवचनसे व अदोषो-द्भावनसे जयपराजय व्यवस्था माननेपर व्यर्थका प्रसंग—यदि पक्षकी सिद्धि असिद्धिके आधारपर जयपराजय नहीं मानते तो इस सम्बन्धमें यह बताओ कि कोई वक्ता वादी या प्रतिवादीमेंसे कोई भी हो, वह अपने पक्षको सिद्ध करता हुआ ही असाधनांग वचनसे अथवा अदोषोद्भावनसे दूसरेका निग्रह करता है या अपने पक्षको न साधता हुआ दूसरेका निग्रह करता है? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि प्रथम विकल्प कहोगे कि वक्ता अपने पक्षको मजबूत बताकर सिद्ध करता हो फिर असाधनांग वचन से या अदोषोदभावनसे दूसरे वक्ताका निग्रह करता है तो ठीक है। इससे यह ही तो सिद्ध हुआ कि अपने पक्षकी सिद्धिसे ही दूसरेका पराजय किया गया है अब यह असा-धनाङ्ग वचन अथवा अदोषोद्भावन नामके अन्य दोषको प्रकट करना व्यर्थ है। मूल बात यह आयी कि जय हुई तो अपने पक्षकी सिद्धिसे ही हुई। यदि कहो कि वक्ता अपने पक्षको न साधता हुआ ही असाधनाङ्ग वचनसे अथवा अदोषोद्भावनसे दूसरेका निग्रह करता है तो इस सम्बन्धमें यह निश्चय है कि असाधनाङ्ग वचन अथवा अदोषोद्भावन किया जानेपर भी किसीकी जीत नहीं है, क्योंकि दोनोंके पक्ष

http://sahjanandvarnishastra.org/

की सिद्धिका अभाव है। जब यहां यह मान रहे हो कि अपने पक्षकी सिद्धि न करता हुआ फिर अन्य दोषको लगाकर दूसरेका निग्रह करता है तो जब पक्षकी सिद्धि नहीं कर पा रहा वह तो कितने ही दोषोंके वह नाम ले, फिर भी वहां किसीकी जीत नही है। तो चाहे असाधनाङ्ग वचन हो चाहे अदोषोदभावन आदिक हो, अपने पक्ष सिद्धि होनेसे ही दूसरेकी पराजय है तो इसमें ही सब आ जाता है।

पक्षासिद्धिके परिज्ञानका उपाय— अब किसका पक्ष सिद्ध हुआ यह सिद्ध करनेके लिए, इसकी जानकारीके लिए यह देखना होगा कि इस वक्ताके कहे हुए हेतु में कोई दोष तो नही है। जो हेत्वाभास दोष बताये गए हैं उनकी छानसे यह हल हो जायगा इस हेतुमें दोष है अथवा नही। यदि दोष नही है तो उस वक्ताकी जय है और उसमें दोष आता है तो उस दोषको बता देनेसे प्रतिवादीका जय हो जाता है और वादी का पराजय हो जाता है। जयपराजयकी व्यवस्था बनानेके लिए छल जाति निग्रहस्थान इनका प्रयोग करना ये सब बुद्धिमानोंकी गोष्ठीके योग्य काम नही हैं। यह तो एक ऐसी जबरदस्ती है कि किसी भी प्रकार गाली गलौजकी तरह कुछ भी छल करके किसी भी प्रकार उनका मुख बन्द करना, इस प्रकारसे जय पराजयकी सही व्यवस्था नही बनायी जा सकती है। तत्त्व निर्णयके प्रसंगमें जयपराजयका प्रयोजन क्या है ? तत्त्व निर्णयके प्रसंगमें जयपराजयका प्रयोजन मात्र इतना ही है कि प्रजा लोग, मुमुक्षु लोग जिज्ञासु लोग यदि उस सही तत्त्वके प्रयोगसे अपना हित करलें। केवल हित करना, अहितसे हटना यही प्रयोजन तत्त्व निर्णयमें हुआ करता है, फिर उसमें छल जाति निग्र-हस्थानके प्रयोगका क्या मौका है ? तो छल जातिके प्रयोग किए जानेसे तत्त्वका सही निर्णय नही होता। तत्त्व निर्णयके लिए समर्थ हेतु, समर्थ दृष्टान्त, समर्थ वचन बोलना चाहिए। तो समर्थ वचन होनेसे जय है और असमर्थ वचन बोलनेसे पराजय होती है।

असाधनाङ्गवचनके व्याख्यान्तरपर विचार—क्षणिकवादमें जो असा-धनाङ्ग वचन और अदोषोद्भावन नाम दो निग्रहस्थान कहे हैं उनमेंसे असाधनाङ्ग वचनकी व्याख्या इस प्रकारसे की गई है कि साधनका अर्थ है सिद्धि और सिद्धिका जो अंग है उसे कहते हैं साधनाङ्ग। सिद्धिका अंग है त्रिरूपलिङ्ग अर्थात् जो अनुमानके तीन अवयव हैं-प्रतिज्ञा हेतु और उदाहरण इन तीन रूपोंमें जो कुछ एक साधन होता है, लिङ्ग होता है वह सिद्धिका अंग है। ऐसा साधनाङ्गका वचन न कहना चुप रह जाना अथवा और कुछ बोल देना वह असाधनाङ्ग वचन कहलाता या चुप रह जाना अथवा और कुछ बोल देना वह भी असाधनाङ्ग वचन कहलाता है। अथवा द्वितीय प्रकारसे अर्थ सुनो—त्रिरूपलिंग तो होता है साधन और उस साधनका जो अंग है अर्थात् समर्थन है जो कि विपक्षमें बाधके प्रमाणके देखने रूप है। किसी भी पक्षका समर्थन विपक्षमें बाधा दिखानेसे पुष्ट होता है तो त्रिरूपलिंग साधनका समर्थन व विपक्षमें बाधक प्रमाणका साधन इसको न कहना सो यह वादीका निग्रह स्थान है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा जो क्षणिकवाद सिद्धान्तमें बताया है उसका पंच अवयव प्रयोगवादीके यहाँ भी समानरूपसे व्याख्यान किया जा सकता है। पंच अवयव प्रयोगवादी योग भी ऐसा कह सकते हैं कि साधनका अंग है पंच अवयवका प्रयोग, उसको न कहनेसे क्षणिक-वादियोंका निग्रहस्थान होता है।

त्रिरूपलक्षण व पञ्चरूप लक्षण साधनाङ्ग मानने वालोंका वार्तालाप–अब सौगत सिद्धान्तका आलम्बन करके बात रखी जा रही है कि क्षणिकवादियोंके यहां पंच अवयवोंका प्रयोग न करनेपर भी उनका निग्रहस्थान नहीं होता है क्योंकि दो अवयव जो अधिक योग बताते हैं उपनय और निगमन, सो इन दोनोंका पक्ष धर्मोपसंहारके सामर्थ्यसे परिज्ञान हो जाया करता है। अतएव उन दोनोंकी अलगसे बात बतानेकी आवश्यकता नहीं रही। जो बात किसी भी प्रकारसे जान ली गई है उसका पुन: कथन करनेसे पुनरुक्तपनेका दोष आता है। सो इस कारण उपनय और निगमनके न कहनेपर भी क्षणिकवादियोंका निग्रह नही होता। कोई यदि ऐसा कहे कि जैसे उन दोनोंका याने उपनय व निगमनका प्रयोग हुए बिना साध्यकी सिद्धि न हो जायगी, यों ही हेतु प्रयोगके बिना भी साध्यसिद्धि हो जावे सो बात नहीं, उपनय और निगमनका प्रयोग करनेपर भी हेतुका प्रयोग यदि नहो किया जाता तो साध्य अर्थकी सिद्धि नहीं होती। इससे पक्ष हेतु और उदाहरण अर्थात् प्रतिज्ञा हेतु दृष्टान्त इन तीन रूपोंका ही कहना आवश्यक है। अब इसके समाधानमें कहते हैं कि जैसे पक्ष धर्मोपसंहारकी सामर्थ्यसे उपनय और निगमनका प्रयोग कर दिया है इसी प्रकार पक्ष धर्मोपसंहार कथन न करनेका भी प्रसंग आ जाता है क्योंकि उपनय निगमनकी भांति पक्ष धर्मोपसंहार भी गम्यमान हो जाता है यदि कहो कि सामर्थ्यसे पक्ष धर्मो-पसंहार गम्यमान कर लिया गया तो भी पक्ष धर्मोपसंहार वचन हेतुमें अपक्ष धर्मत्व रूपसे असिद्धपना नहीं हो, इसके लिए किया जाता है। जैसे कि अनुमान किया गया कि जो सत् हैं वे सब क्षणिक होते हैं। सर्व क्षणिक है सत् होनेसे। जो सत् होता है वह क्षणिक होता है। जैसे घट सत् है तो अनित्य है, ऐसे ही सत् शब्द भी है इस कारण शब्द भी क्षणिक है। यहां पक्षधर्मका उपसंहार सामर्थ्यसे जान लिया गया। किन्तु इसका कथन करना इसलिए आवश्यक है कि कहीं इस प्रकारकी असिद्धि कोई न समझले कि हेतु पक्षका धर्म ही नहीं है, इसमें हेतुकी पक्षधर्मता असिद्ध न हो जावे, अतएव पक्ष धर्मोपसंहारका कथन किया जाता है, तो उत्तरमें कहते हैं कि इसी प्रकार तो साध्यके आधारमें सन्देह न रहे इसके वास्ते गम्यमान भी पक्ष और निगमन हो उसका कथन क्यों न किया जाय? अथवा पक्ष हेतु उदाहरण उपनय इनको एका-र्थक दिखानेके लिए क्यों न कथन किया जाय? क्योंकि जब तक पक्ष आदिकका एकार्थपनेके रूपसे दर्शन नही किया जाता, घटित नही किया जाता, तब तक मंतव्य संगत नही होता। जैसे भिन्न विषयसे सम्बन्ध रखने वाले पक्ष आदिक उनसे कोई मंतव्य तो सिद्ध नही होता, क्योंकि वह भिन्न विषय वाला है। यों ये भिन्न विषय

Version 1

वाले नही हैं पक्ष हेतु उदाहरण उपनय, किन्तु एकार्थपनेको लिए हुए हैं ऐसा प्रदर्शन करनेके लिए पक्ष, हेतु उदाहरणका वर्णन आवश्यक है। उपनय आदिकका भी वर्णन आवश्यक है।

असाधानाङ्गवचनपर शंकाकार व प्रतिशंकाकारोंका प्रश्नोत्तर—अब यहां क्षणिकवादी कहता है कि केवल प्रतिज्ञासे ही साध्यकी सिद्धि माननेपर हेतु आदिकका कथन करना निरर्थक हो जायगा। अन्यथा इस प्रतिज्ञामें साधनाङ्गता भी नही हो सकती। समाधानमें कहते कि क्षणिकवादियोंके भी फिर हेतुसे साध्यकी सिद्धि होनेपर दृष्टान्त अनर्थक हो जायगा। यदि कहो कि हेतुसे साध्यकी सिद्धि नहीं होती। तब फिर यह सिद्ध हो गया कि हेतुमें साधनापना नहीं है। शंकाकार कहता है कि साध्य और साधनमें व्याप्ति दिखानेके लिए दृष्टान्तकी आवश्यकता होती है अतएव दृष्टान्त अनर्थक नही है। क्योंकि साध्य साधनकी व्याप्ति न दिखानेपर हेतु साधक न होगा, गमक न होगा, साध्य भी सिद्ध न होगा, साध्य भी सिद्ध न हो सकेगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी असंगत है। जब सर्व पदार्थोंको अनित्य सिद्ध किया जा रहा है और उसमें हेतु सत्त्व आदिक दिये जायें तो उसमें तो कोई दृष्टान्त ही सम्भव नही। तब देखिये यहाँ दृष्टान्तके बिना आप क्षणिकवादी लोग हेतुको गमक मानते हैं और जब यह कह दिया कि दृष्टान्तके बिना हेतु गमक नही होता। तब फिर दृष्टान्तके बिना है ना यह सत्त्व हेतु सो इस ही हेतुको अगमक हो जाना चाहिए। यदि कहो कि विपक्ष व्यावृत्तिसे सत्त्व आदिक हेतु गमक बन जाते हैं अर्थात् जो अनुमान किया गया कि सर्व पदार्थ क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे तो यद्यपि इस अनुमान में दृष्टान्त कोई नहीं मिलता, क्योंकि सत्त्व सभी पदार्थमें है और सभीको क्षणिक सिद्ध किया जा रहा है। अब सत्को छोड़कर और कुछ क्या है, जिसको कि सपक्ष बनाया जाय ? तो यों यहां हेतुका दृष्टान्त नहीं मिलता है। सो यहां क्षणिकवादी यह कह रहे हैं यहाँ दृष्टान्त न भी मिला, किन्तु जो विपक्ष हैं, साध्यके विपरीत है, कल्पनामें भी आ गया है, अर्थात् जो क्षणिक है, नित्य है उसमें सत्त्व नही होता। यों विपक्ष व्यावृत्तिसे हेतु साध्यका गमक हो जायगा। तब समाधानमें कहते है कि जिस तरह एक इस अनुमानमें दृष्टान्तके न होनेपर भी हेतुका साध्यका साधक मान लिया गया तो इसी प्रकार सभी हेतुवोंमें दृष्टान्तके बिना हेतु साध्यके गमक हो जायेंगे। अब दृष्टान्त देना अनर्थक ही रहा।

प्रयोजनवश गम्यमानके कथनकी भी आवश्यकता—अब इस प्रसंगमें एक स्पष्ट बात यह भी निकली कि जो विपक्ष व्यावृत्तिसे हेतुका तो समर्थन करता है वह इससे यहाँ प्रतिज्ञाको नही मानता, तो जो विपक्ष व्यावृत्तिसे हेतुका समर्थन कर रहा हो वह क्षणिकवादी प्रतिज्ञाके न बोलनेपर कहां तो हेतु रहे और कहाँ साध्य रहे ? यदि कहो कि प्रतिज्ञाका विषय जो कि प्रतिज्ञामें गम्यमान है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अपने आप सिद्ध है उसमें हेतु और साध्यकी वृत्ति लगा दी जायगी। तब फिर उत्तरमें कहते हैं कि इस प्रकार तो गम्यमान होनेपर भी हेतुका भी समर्थन हो जाय फिर उक्त हेतुकी क्यों आवश्यकता रहे ? तब हेतुको कहनेकी क्या जरूरत है ? वह भी गम्यमान बन जायगा ? यदि कहो कि गम्यमान होनेपर भी अर्थात् प्रसंगमें अनेक बातें कही जानेपर स्वयं सिद्ध हो गया हेतु तो भी मंद बुद्धियोंके ज्ञान करानेके लिए हेतुका कथन किया जाता है। समाधानमें कहते हैं कि तब तो प्रतिज्ञाके उपसंहार करनेमें कौनसा अनर्थ किया जा रहा है ? प्रतिज्ञा भी गम्यमान है, तो भी मंद बुद्धियोंके समझानेके लिए प्रतिज्ञाके उपसंहारका कथन किया जाता है।

जयपराजय व्यवस्थाका हेतु —यहाँ मुख्य प्रकरण असाधनांगवचनका चल रहा है। क्षणिकवादी यहाँ कहता है कि साधनके अंग तीन होते हैं। उनका कथन कोई न कर सके तो वह वादीके लिए दूषण हो जाता है, निग्रह हो जाता है। उसपर पंच-अवयव प्रयोगवादी यह कहता है कि साधनके अंग हैं ५ अवयव उनके न कहनेपर वादीका निग्रह हो जाता है। कुछ परस्परकी चर्चा चलनेके बाद निष्कर्ष यह समझना चाहिए कि अपने पक्षकी सिद्धि होनेसे प्रतिपक्षका निग्रह होता है और प्रतिपक्षकी सिद्धि होनेसे पक्षवादीका निग्रह होता है। असाधनांगवचन भी आ जाय तो भी असाधनांग वचनके कारण निग्रह नही होता, किन्तु वक्ता अपना पक्ष सिद्ध नहीं कर पाया और प्रतिपक्षकी सिद्धि हो गई अतएव वक्ताका निग्रह हुआ।

पक्षसिद्धि करनेवालेका अन्य असाधन अङ्ग वचन कहनेसे निग्रहका अभाव — असाधनांग वचनके सम्बन्धमें इस प्रकारका व्याख्यानान्तर पाया जाता है कि साधर्म्यरूपसे हेतुका कथन करनेपर वैधर्म्यका प्रतिपादन करना और वैधर्म्यरूपसे हेतु का कथन किये जानेपर साधर्म्यका प्रतिपादन करना यह चूंकि गम्यमान है इस कारण पुनरुक्त है सो यह साधन अंग नही है। क्षणिकवादीके सिद्धान्तपर समाधानरूपसे कहा जाता है कि यह बात अयुक्त है क्योंकि यह बतलाओ कि सही साधनके सामर्थ्यसे अपने पक्षको सिद्ध करने वाले वादीका निग्रह होता है याने सही साधनके समर्थनसे अपने पक्षको सिद्ध करने वाले वादीका निग्रह होता है तो भला साध्यसिद्धिके अप्रतिबंधी (अनियामक) वचनकी अधिकता पाये जाने मात्रसे ही इसका निग्रह कैसे हो जायगा? इसमें तो विरोध है, क्योंकि जब सम्यक प्रकारसे साध्यकी सिद्धि हो गई तो निग्रह कैसे हुआ ? यहाँ प्रथम पक्ष लिया जा रहा है कि सही साधनसामर्थ्यसे अपने वचनको सिद्ध करने वाले वादीका निग्रह होता है सो यह कैसे संभव है ? जो साध्यसिद्धिमें सहयोग नही देते ऐसे कुछ वचन अधिक भी निकल जायें उससे निग्रहस्थान नही होता अन्यथा तब तो नाटक आदिकका जो घोषण किया जाता है उसका भी निग्रहस्थान होगा। बात यह है कि कोई अपने साध्यको सिद्ध करले, फिर ज्यादह बोलनेकी बात की जाय तो भी उसको दोष नही है। अपने साध्यको सिद्ध न कर सके दोष तो इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जगह है । जब इस विकल्पमें यह स्वीकार किया गया कि अपने पक्षको सिद्ध करनेवाले वादीका निग्रह हो रहा तब निग्रह नही कहा जाता अन्यथा कोई कुछ अधिक बोलनेकी तरह कुछ अधिक प्रवृत्ति करे, पान खाये, कोई भौंह चलाये, कोई हाथ फटकारे, इससे भी सब्य साधनवादियोंका निग्रह होना मान लो । सो तो नही माना जा सकता है । अतः कोई सही साधन सामर्थ्यसे अपने पक्षकी सिद्धि करले तब फिर कितना ही अधिक बोले, उससे उसको निग्रह नही होता ।

अपने पक्षको न साध सकने वाले प्रतिवादीके द्वारा वचनाधिक्य बताकर वादीके निग्रह किये जानेकी अशक्यता—यदि कहो कि अपने पक्षको न सिद्ध करने वाले वादीका वचनाधिक्य बताकर निग्रह होता है तो इस सम्बन्धमें दो बातें पूछने योग्य हैं कि प्रतिवादी अपने पक्षको सिद्ध करले तब वादीके वचनोंकी अधिकता बता कर वह प्रतिवादी वादीका निग्रह करता है या प्रतिवादी अपने पक्षको न साधकर वादी के वचनोंकी अधिकता बताकर वादीका निग्रह करता है ? इन दोनों विकल्पोंमेंसे क्या स्वीकार है ? यदि कहो कि प्रथम विकल्प स्वीकार है अर्थात् प्रतिवादीने अपना पक्ष सिद्ध कर लिया फिर वादीके वचनोंकी अधिकताका षोष बताया और उससे वादीका निग्रह हुआ तो प्रतिवादीने जो अपने पक्षकी सिद्धिकी है इससे ही वादीका निग्रह हुआ अब वचनोंकी अधिकताका दोष बताना निरर्थक है । यदि वचनोंकी अधिकता भी बतायी जाय, और प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि न हो तो कभी भी प्रतिवादीका जय नही हो सकता है । दूसरे विकल्पमें प्रतिवादी अपने पक्षको न साधकर वादीके वचनोंकी अधिकता दिखाकर निग्रह कर देता है तो इस सम्बन्धमें अब यहां दो बातें आयी कि वादीने तो वचनोंकी अधिकताकी और प्रतिवादीने अपने पक्षको सिद्ध न कर पाया, तो जैसे कि इस प्रसंगमें बताया जा रहा है कि वचनाधिकता दोष है तो प्रतिवादी अपने पक्षको सिद्ध नही कर पा रहा यह दोष क्या कम है ? अपने पक्षको सिद्ध न कर सकना यह उससे भी अधिक दोष है । अथवा मान लो समान दोष है तो भी किसीका पराजय या किसीका जय सिद्ध न हुआ अथवा दोनोंका पराजय और दोनोंका जय सिद्ध हुआ, क्योंकि अपने पक्षकी सिद्धि दोनों ही नही कर सके । वहाँ वचनोंकी अधिकता बताकर दोष दिया जा रहा तो यहाँ प्रतिवादी अपने पक्षकी सिद्धि नही कर पा रहा, यह इसके दोष लगा हुआ है अतएव जय कहो तो दोनोंकी और पराजय कहो तो दोनों की अथवा दोनोंमें किसीकी भी जय पराजय नही है ।

स्वपक्षसिद्धयसिद्धिसे जयपराजय व्यवस्था न मानकर साधन सामर्थ्य के ज्ञान अज्ञानकी घोषणासे जयपराजय व्यवस्था माननेकी शंका—अब यहाँ शंकाकार कह रहा है कि जय और पराजय स्वपक्षकी सिद्धि और असिद्धिके कारणसे नही होती क्योंकि स्वपक्षकी सिद्धि और स्वपक्षकी असिद्धि होनेका इस जय पराजयके प्रसंगमें प्राधान्य नही है, किन्तु जय पराजय तो साधन सामर्थ्यको ज्ञान और अज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बता पानेके कारण है। साधनवादीने सम्यक् साधन जानकर साधन कहना चाहा और दूषणवादीने साधन दूषण जानकर दूषण कहना चाहा। अब वहाँ साधर्म्यके वचनसे अथवा वैधर्म्यके वचनसे अर्थकी प्रतिपत्ति होनेपर अर्थात् साध्यका परिज्ञान होनेपर उन दोनोंके वचनोंमें, साधर्म्य वचन एवं वैधर्म्य वचन दोनोंके कहे जानेपर वादीका प्रतिवादीने सभामें असाधनाङ्ग वचन नामक दोष प्रकट किया तो इससे यह सिद्ध हुआ कि वादीको समीचीन साधन बोलनेका ज्ञान नहीं है। इसी कारण तो वादीकी हार हुई और उस समय प्रतिवादीने वादीके कथनमें दूषण दिया और वादीके दूषणने ज्ञानका निर्णय किया तो इससे उसकी जीत हो गई। तो दूसरेके दूषणके ज्ञानका निर्णय करनेसे तो जीत हुई है प्रतिवादीकी और वादीके विषयमें प्रतिवादी यह सिद्ध करदे कि इसको समीचीन साधनका ज्ञान नहीं है, समीचीन साधन कहना यह जानता नहीं है तो वादीकी हार हो गई। यों जय और पराजयकी व्यवस्था वादी और प्रतिवादीके ज्ञान और अज्ञानके कारणसे है अर्थात् सभामें ज्ञान अज्ञान सिद्ध कर दिया जाय उससे जीत और हार है। अपने पक्षकी सिद्धि अथवा असिद्धिके कारण जीत हारकी व्यवस्था नहीं है।

निर्दोष साधनवादीको निग्रहीत किये जानेकी अशक्यता—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी बिना विचारे ही सुन्दर लग रहा है। विचार करनेपर इस कथनमें सारता ज्ञात नहीं होती। भला यह बतलाओ कि वह प्रतिवादी जो कि वादीके वचनोंकी अधिकतारूप दोषको प्रकट कर रहा है तो क्या निर्दोष साधन कहने वाले वादीको वह दोष लग रहा है या साधनाभास कहने वाले वादीको वचनाधिक्यका दोष लग रहा है ? यहाँ प्रतिवादी वचनाधिक्य दोषको प्रकट करके वादीकी हार और अपनी जीतकी घोषणा करना चाहता है, इस सम्बन्धमें ये दो विकल्प किए गए कि सही साधन बोलने वाले वादीके वचनाधिक्यके दोषसे पराजयकी बात सिद्ध करना चाहा है या साधनाभास बोलने वाले वादीको वचनाधिक्य दोषकी बात कहकर पराजित करना चाहा है। यदि कहो कि वादी समीचीन साधन बोल रहा है फिर भी उसके वचनाधिक्यको बताकर यह सिद्ध किया जा रहा है कि वादीको समीचीन साधन बोलनेका ज्ञान नहीं है। तो यह बात तो बड़ी विरुद्ध है। जब यह मान लिया कि वादी समीचीन साधन बोल रहा है और फिर यह साबित करे कि इसको समीचीन साधन कहनेका ज्ञान नहीं है। यह बात यों भी असम्भव है कि इतने ही परिमाण रूपसे सम्यक साधन कहना चाहिए, इस ज्ञानकी ही असम्भवता है। प्रयोजन तो यह देखना चाहिए, इस ज्ञानकी ही असम्भवता है। प्रयोजन तो यह देखना चाहिए कि वादी जिस मंतव्यको सिद्ध करना चाहता है वक्ता, उस मंतव्यकी बराबर सिद्धि हो पायी अथवा नहीं ? वचन अधिक बोले अथवा वचन कम बोले, झलक तो यह लेनो चाहिए कि वादी अपने पक्षका साधन ठीक प्रकारसे कर सका अथवा नहीं ? तो जब इसे विकल्पसे स्वयं ही स्वीकार किया जा रहा है कि समीचीन साधन बोलने

Version 1

वाले वादीके वचनाधिक्यका दोष लगाकर हरानेकी घोषणा चाही है तो सिद्ध हो गया कि वादी समीचीन साधन कह रहा है। प्रतिवादीको वादीके समीचीन साधन कहनेका ज्ञान कैसे नही है ?

साधनाभासवादीको साधनदूषण बताकर ही निग्रहीत किये जानेकी शक्यता—अब यदि दूसरा विकल्प कहते हो कि प्रतिवादी साधनाभासवादीको वचनाधिक्यका दोष कहकर पराजयकी बात कहना चाहता है तो इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रतिवादीको दूषणका ज्ञान नही है, क्योंकि वादीने जब साधनाभास कहा तो प्रतिवादी को साधनाभासकी बात कहनी चाहिए थी, पर वह साधनाभासकी बात उपस्थित न करके केवल वचनाधिक्यकी बात करता है। वचनाधिक्य कोई दोष नही है। हाँ, साध्यसिद्ध हो जानेपर फिर वचन बोलते रहना तो निरर्थकमें सामिल हो सकता, पर वचनाधिक्यसे वादीकी हार हो जाय, यह नियमकी बात नही बनती। और, फिर यहां प्रतिवादीने तो वादीके कहे हुए साधनाभासका दूषण नही बता पाया और वचनाधिक्य की बात कह रहा है तो इससे जब प्रतिवादीको साधनाभास दूषणका ज्ञान ही नही है, क्योंकि वह साधनाभासको तो प्रकट न कर सका तब कैसे प्रतिवादीकी जीत हुई ?

वचनाधिक्यमात्र घोषित करनेसे प्रतिवादीके दूषणज्ञताका अभाव—यदि कहो कि प्रतिवादीने जो वादीका वचनाधिक्य दोष बताया अर्थात् वादीके वचनों की अधिकताके दोषका ज्ञान होनेसे प्रतिवादीको दूषणज्ञ कहा जा सकता है कि प्रतिवादी दूषणको जान रहा है। यदि ऐसा कहो तो उसके समाधानमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि जैसे वचनाधिक्य दोषके कहनेसे प्रतिवादीको दूषणज्ञ कहा जा रहा है तो साधनाभासके अज्ञान होनेसे उसे दूषणका अज्ञानी कैसे न कहा जा सकेगा ? और, बल्कि मुख्यता तो साधनाभास दूषणको बतानेकी है, वचनाधिक्यमें जो दोष है वह अल्प है और कभी कोई दोष है भी नही, लेकिन साधनाभास तो सदैव सदोष है और साधनाभास दूषणको वह जान न सका तो इसमें वह दूषणका ज्ञाता न रहा। तो पराजयके कारणमें एक यह भी कारण बताया था शंकाकारने कि वादीके दोषको प्रकट न कर सकना यह प्रतिवादीके पराजयका कारण है। वादी यदि असमीचीन साधन बोल देता है, उसके बताये हुए साधनमें दूषण है और उसे प्रतिवादी नही जानता, उस दूषणका प्रतिवादी उद्भावन नही कर सकता तो प्रतिवादीकी हार बताई गई है। तो यहाँ देखिये, साधनाभासके कहने वाले वादीके वचनाधिक्यको बताने वाला प्रतिवादी वादीके दोषको न बता सका। साधनाभास जो दूषण है उसका ज्ञान अब नही रहा प्रतिवादीको प्रतिवादीकी हार समझिये ! इस स्थितिमें प्रतिवादीकी हार भी निवारण की जाना अशक्य है।

वादीके वचनाधिक्य होनेपर भी प्रतिवादीके अदोषोद्भावनामें प्रति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वादीके जयकी असंभवता— यदि कहो कि वादीके वचनाधिक्य दोषके प्रकट कर देने मात्रसे ही प्रतिवादीकी जीत सिद्ध हो गई और इस कारण अब साधनाभासरूप दूषणके प्रकट करनेकी आवश्यकता न रही अर्थात् साधनाभासका उद्भावन करना अनर्थक है। एक वचनाधिक्य दोषको कह देने मात्रसे प्रतिवादीकी जीत बन जाती है। तो इसके उत्तरमें यह सोचिये कि साधनाभासको प्रकट न कर सकनेसे प्रतिवादीके पराजयकी सिद्धि हो जानेपर वचनाधिक्यको प्रकट करना कैसे जीतके लिए माना जा सकता है ? यहाँ प्रसंग यह हो गया कि दोष यहाँ दो हैं—एक वादीका दोष और एक प्रतिवादीका दोष। प्रतिवादी वादीके लिए यह दोष दे रहा है कि वादी वचन अधिक बोल गया, पर प्रतिवादी वादीके साधनाभास दूषणको न बता सका। तो यहाँ शंकाकार अपनी जीतकी घोषणाके लिए यह युक्ति दे रहा है कि जब शंकाकारने वचनाधिक्य दोषको बता दिया तब साधनाभासका दोष बतानेकी आवश्यकता न रही, उससे ही जीत बन गई। इसके प्रत्युत्तरमें यह भी कहा जा सकता है और इसमें बल विशेष है कि जब प्रतिवादी वादीके साधनाभासको न बता सका तो प्रतिवादीकी पराजय हो गई। अब प्रतिवादीकी पराजय हो जानेपर वह प्रतिवादी वचनाधिक्यको प्रकट कर रहा, लेकिन उसका यह उद्भावन प्रतिवादीकी जीतके लिए नही बन सकता है।

वचनाधिक्य व दोषोद्भावन दोनोंको जयसाधन माननेपर पुनरुक्तके निग्रहत्वके अभावकी सिद्धि— अब शंकाकार कहता है कि चलो, वचनाधिक्य और साधनाभास दोनोंको प्रकट करने वाले प्रतिवादीकी जीत तो मान लोगे ना, अर्थात् वादी का जो वचनाधिक्य दोष है वह भी प्रकट करे और वादीके साधनमें जो साधनाभास दूषण है उसे भी प्रकट करे तब वहाँ प्रतिवादीकी जीत हो गयी ना ? उत्तमें कहते हैं कि ठीक है लेकिन इस तरह फिर असाधनाङ्ग वचनकी व्याख्यामें यह कहना कि साधर्म्यसे हेतुके कहनेपर वैधर्म्य वचन कहना और वैधर्म्य द्वारा हेतुके कहनेपर साधर्म्यका प्रतिपादन करना ये सब साधनाङ्ग नही हैं। यह बात कैसे सही रह सकेगी ? जब वचनाधिक्य और साधनाभास दोनों बातोंके कहनेसे यहाँ प्रतिवादीके जयकी व्यवस्था कर रहे हो तो दोनोंका कहना किसी बातको मजबूत करनेका कारण ही तो बना। फिर साधर्म्यके प्रयोग करनेपर वैधर्म्य कहना यह भी पराजयके लिए कैसे बनेगा ? यह तो और पक्षकी दृढ़ताको सिद्ध करनेका कारण है। और इस प्रकार वैधर्म्यका प्रयोग करनेपर साधर्म्यका प्रतिपादन करना यह भी पराजयके लिए कैसे सम्भव हो सकता है ? पक्षसिद्धिके लिए साधर्म्यवचन वैधर्म्यवचन दोनोंको ही कहकर यदि कोई प्रतिज्ञाकी सिद्ध कर रहा है तो वह असाधनाङ्ग नही है। वह साधनका ही अंग है और उसकी प्रतिज्ञाकी सिद्धि ही होती है। इस कथनमें निष्कर्ष यह प्रकट हुआ कि असाधनाङ्गवचन और अदोषोद्भावन नामका निग्रहस्थान भी तब ही कुछ-कुछ अपनी झलक दे सकता है जब कि मूलमें वादीके पक्षकी सिद्धि हुई न हो। वादी अपने सही साधनको बोल न सका हो और प्रतिवादी द्वारा उसके साधनाभासका वर्णन कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिया गया हो, तब यह उसके निग्रहस्थानकी बातमें कुछ झांकी दे सकता है, लेकिन इसके विपरीत यह भी समझ लीजिए कि वादी यदि समीचीन साधन बोल सका है और अपने पक्षकी ठीक सिद्धि कर सका है फिर उसके बाद प्रतिवादी असाधनांग वचन कहे अथवा अदोषोद्भावन करे, कुछ भी कहे, वादीकी पराजय नही साबित कर सकता है। जय और पराजय अपने पक्षकी सिद्धि और अपने पक्षकी असिद्धिके प्रसंगपर ही निर्भर हैं। और, स्वपक्षकी सिद्धि प्रमाणसे होती है, स्वपक्षकी असिद्धि प्रमाणाभास बोलनेपर होती है। इस कारण प्रमाण और प्रमाणाभासको बोल देना ही जय-पराजयका कारण है। जिसे सीधे सुगम स्पष्ट शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि समर्थ वचनका बोलना तो जयका कारण है और असमर्थ वचनका बोलना पराजयका कारण है।

असाधनाङ्गवचनसे निग्रहत्व माननेपर पक्षपतिपक्षपरिग्रहत्व विशेषणका वैयर्थ्य—जब कि शंकाकार वचनाधिक्यका दूषण देकर अपनेको कृतार्थ मान लेता है, साधनाभास बतानेकी आवश्यकता नही समझता है तो फिर उसके सिद्धान्त से वादी और प्रतिवादीके पक्ष और प्रतिपक्षके परिग्रहकी व्यर्थता क्यों न हो जायगी क्योंकि किसी भी एक पक्षके साधनसामर्थ्यका ज्ञान हो गया अथवा साधनसामर्थ्यका अज्ञान हो गया और इतनेमात्रसे जय पराजयकी व्यवस्था है तो वहाँ दूसरे पक्षकी कोई बात ही न रही और तब जैसे कि शब्दादिकमें नित्यत्व अथवा अनित्यत्वकी परीक्षाके प्रसंगमें वादीने जो साधन दिया उस साधनकी सामर्थ्यका ज्ञान हुआ और अन्यका अज्ञान रहा तो वह जय अथवा पराजयके लिए कारण न हो यह बात तो नहीं बनेगी। अर्थात् वादीने जो साधन दिया है उसकी सामर्थ्य जाननी है। साधन सामर्थ्य जाननेमें आये तो उसकी जय हो गयी। साधन सामर्थ्य जाननेमें न आ सके तो उसकी पराजय हो गयी। अब इस तरह मान लेनेपर प्रतिपक्षके परिग्रहकी कोई आवश्यकता नहीं रही अथवा पक्षसिद्धि और प्रतिपक्ष सिद्धिके लिए कोई बात नही कही गई। बस साधन सामर्थ्यका ज्ञान हो गया अथवा साधन सामर्थ्यका अज्ञान रहा तो उससे ही जय पराजयकी व्यवस्था मान ली गई। तो अब पक्ष और प्रतिपक्षका परिग्रह हो उसे वाद कहते हैं, यह बात सिद्ध न हो सकी इसके विरुद्ध बात पहुंची।

युगपत् दोनोंके साधनसामर्थ्यके ज्ञानसे जयपराजयव्यवस्थाका अभाव—साधनसामर्थ्यका ज्ञान अज्ञान थापनेपर दूसरी बात यह है कि यदि एक साथ दोनोंके साधन सामर्थ्यका ज्ञान हो जाय, वादी जो साधन बता रहा है और प्रतिवादी जो प्रतिपक्ष साधन कह रहा है दोनोंकी सामर्थ्यका ज्ञान हो जाय तब फिर किसका जय और किसका पराजय होगा ? क्योंकि साधनसामर्थ्य तो दोनोंकी वादी और प्रतिवादी की जान ली गई है। कोई यह कहे कि न हो किसीकी जय पराजय। तो उत्तरमें कहते है कि साधन बोलने वाला वक्ता जिसने कि वचन अधिक बोल दिया है उसके साधन सामर्थ्यका अज्ञान सिद्ध होनेसे और प्रतिवादीका वचनाधिक्य नामक दोष प्रकट करने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से अब हुआ क्या यहाँ कि प्रतिवादीको वादीके वचनाधिक्य नामक दोषमात्रका ज्ञान हुआ, वचनाधिक्यका ज्ञान किया और वादीने जो साधन बोला था उसमें जो कोई दोष था उसका तो ज्ञान न हुआ अब ऐसी स्थितिमें न किसीकी जीत है और न किसी की हार है। इसका भाव यह है कि इस प्रसंगमें वादी और प्रतिवादी इन दोनोंकी समान स्थिति हो गयी। कोई साधनाभासवादी भी है और वह वचन अधिक बोल गया। अब प्रतिवादीको तो वादीके साधन सामर्थ्यका ज्ञान कुछ है नहीं और वचनाधिक्यका दूषण दे रहा तो वचनाधिक्यका दूषण दे रहा तो वचनाधिक्यका दूषण देनेके मायने यह है कि जब प्रतिवादीको वादीके द्वारा कहे गए साधनाभासके दोषका ज्ञान नहीं है तो एक गल्ती तो वादीकी हुई और एक गल्ती प्रतिवादीकी हुई। वादी की त्रुटि तो वादीके वचनाधिक्यकी बतलायी कि यह फालतू वचन बोल गया और प्रतिवादीको वादीके कहे गए साधनके दोषका अज्ञान है तो किसकी जीत और किसकी हार? इसमें कोई निर्णय नही है। बल्कि अपेक्षाकृत दृष्टिसे देखा जाय तो वचन अधिक बोलना उतना दोषकारी नही है जितना कि वादीके साधनके दोषका ज्ञान न हो सकना प्रतिवादीके लिए दूषण है। तब वचनाधिक्यकी बात कहकर वादीका दूषण या निग्रह नहीं किया जा सकता।

साधनसामर्थ्यके प्रकाश अप्रकाशसे जयपराजयव्यवस्थाकी अशक्यता– ऐसा भी कोई नियम नही है कि जो जिसके दोषको जानता है वह उसके गुणको भी जानता है। कोई होते ऐसे पुरुष कि दोष और गुण दोनोंको जानते हों, लेकिन नियम नही है ऐसा कि जो पुरुष किसीके दोषको जानता हो तो वह उसके गुणोंको भी जान लेता है। जैसे कि विषद्रव्यमें प्राणहरणकी शक्ति है, विषपान करनेसे पुरुष मर जाया करते हैं तो विष द्रव्यमें मरणकी शक्ति है, इसका किसी प्रकार ज्ञान भी हो गया तो उस ज्ञानके होनेपर यह ज्ञान अनुदित है कि विषद्रव्यमें कोढ़ियोंके कोढ़को हरनेकी भी शक्ति है। विषके अनुपान और मेलके भेदसे वहीं विष जो किसीके प्राणघातका कारण है वही विष कोढ़ जैसे कठिन रोगको नष्ट करनेका भी कारण बनता है। पर जो विषके दोषको जानता है. मारण शक्तिको समझता है वह रोग विनाशकी शक्ति को भी समझले यह कोई नियम तो नही है। इसी प्रकार दूषणकी दृष्टि रखने वाले को अन्यके साधनगुणकी दृष्टि हो जाय यह नियोजित नही है। इस कारण साधनकी सामर्थ्यका ज्ञान और अज्ञानके कारण जीत और हारकी व्यवस्था करना शक्य नही है।

स्वपक्षसिद्धयसिद्धिके कारण ही जय पराजयव्यवस्थाकी शक्यता— शंकाकारने असाधनाङ्ग वचनकी व्याख्या करते समय कुछ वाद विवादके बाद यह कहा कि जय और पराजय अपने पक्षकी सिद्धि और असिद्धिके कारण नहीं होती। किन्तु उस सिद्धिके उस साधन सामर्थ्यके ज्ञान और अज्ञानके कारणसे होती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और हारकी घोषणा कराना है जन साधारणके मानस पटलपर किस प्रकार यह असर आये कि जन साधारण जान जायें कि इसकी जीत हुई है और इसकी हार हुई है। सो निग्रहवादके सिद्धान्तमें केवल दूसरेको ज्ञान नही है यह थोथना माध्यम रखा गया है किन्तु शास्त्र प्रणयन हितके लिये किया जाता है और जब तत्त्वकी बात बादमें आ रही हो तो वाद विवादमें प्रयोजन विशुद्ध यही होना चाहिए कि सब समझ जायें कि आत्माका हित करने वाला कौन सा तत्त्व है ? अर्थात् वस्तुका यथार्थ स्वरूप क्या है इसको समझनेके लिए शास्त्र हैं। वाद हैं, चर्चायें है इसका कुछ भी उद्देश्य न रखा, पर जीतहारकी जहाँ प्रधानता दी वहां यह विषय इस प्रकार बन जाता है जैसे कि कुश्तीमें या अन्य कलाओंमे जीतहारकी बात रख दी जाती है। इसमें ज्ञानलाभकी कोई बात न रही अतः यह मानना ही होगा कि जय पराजय अपने पक्ष की सिद्धि और असिद्धिके कारणसे होती है साधन सामर्थ्यके ज्ञान और अज्ञानकी घोषणाके कारण जय पराजयकी व्यवस्था नही बनायी जा सकती। इसी मान्यतासे याने अपने पक्षकी सिद्धि और असिद्धिके कारण जय और पराजय निर्दोषरूपसे विदित होते हैं। ऐसा मान लिया जानेपर जय पराजयकी व्यवस्था भी सिद्ध कर ली गई और पक्ष प्रतिपक्षके परिग्रहकी व्यर्थता भी नहीं हुई। किसीके किसी कारणसे किसी साधनसे अपने पक्षको सिद्धि सुनिश्चित हो जाय तो दूसरे प्रतिपक्षीके पक्षकी सिद्धि नही हुई, यह स्वयं सिद्ध हो गया और तब एक साथ जय और पराजयका प्रसंग नही आता। इस कारण स्वपक्षकी सिद्धि और असिद्धिपर ही जय पराजय का निश्चय निर्भर हैं इसमें किसी भी प्रकारके सन्देहकी बात नहीं रहती।

अदोषोद्भावन निग्रहस्थानकी मीमांसा -क्षणिकवादमें जो यह बताया गया था कि अदोषोद्भावन भी इसका निग्रह स्थान है और उसके विषयमें जो यह विवेचन है कि अदोषोद्भावनमे जो अ शब्द है, नय समास है उस नय समासके कारण इसका अर्थ बनता है प्रसज्य प्रतिषेध और पर्युदासका अर्थ है जिसका अभाव किया है उसके एवजमें अन्य कुछ बात प्रकट होना। तो अदोषोद्भावनका अर्थ प्रसज्य प्रतिषेधरूप माननेपर भाव इतना ही हुआ कि दोषके उद्भावकका अभाव मात्र रहा। याने अदोषद्भावन नामक निग्रहस्थानका इतना ही अर्थ रहा कि दोषके उद्भावनका अत्यन्ताभाव है। और पर्युदास माननेपर यह अर्थ हुआ कि दोषाभासोंका अथवा अन्य दोषोंका प्रकट करना सो प्रतिवादीका निग्रह स्थान है। अब इसका समाधान सुनिये! निग्रहवादी जो असाधनाङ्ग वचन और अदोषोद्भावनका निग्रहस्थान मानते हैं उन निग्रहवादियोंके द्वारा दोषवान साधन प्रयुक्त होनेपर निग्रह स्थानका होना अनुमत ही है क्योंकि साधन सदोष कहा ना ! यदि वादी अपने पक्षकी सिद्ध कर लेता है तो इसमें प्रतिवादीका निग्रहस्थान होना अनुमत ही है। हाँ वचनाधिक्यकी बात अवश्य ऐसी निर्बल है कि वह दोषके लिये समर्थ नहीं है। इस सम्बन्धमें पहिले ही बहुत कुछ वर्णन किया जा चुका है। वचनाधिक्यकी कोई सीमा नही की जा सकती है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इतना कहा तो यह कहलायेगा उचित वचन और इससे अधिक कहा तो वह कहलायेगा वचनाधिक्य। जैसे कि लोकमें धनी किसे कहते है जिसके पास धन अधिक हो। तो क्या यह व्यवस्था बता सकता है कोई कि इतना तक धन हो तो उसे अधिक धनी नही कहते और उससे जरा भी अधिक हो तो उसे अधिक धनी कहते? ऐसी व्यवस्था तो कोई हो ही नही सकती। यह तो अपनी-अपनी कल्पनाकी बात है। जो जिस प्रकारके विचारमें अधिक धन समझ लेता है उसके लिए वह धनाधिक्य है। यों ही वचनाधिक्यकी भी बात है। जो जितने कथनको अधिक वचन समझ ले उसकी दृष्टि में यही वचनाधिक्य है।

न्यून अधिक दोषमें दोनोंके निग्रहस्थानवत्त्वकी प्रसक्ति — अब एक अन्य भी बात देखिये! जैसे कि क्षणिकवादी ५ अवयवोंके प्रयोगमें वचनाधिक्य दोष मानते हैं क्योंकि क्षणिकवादी तीन अवयव अनुमानके मानते हैं तो उनकी दृष्टिमें उपनय और निगमन नामके दो अवयव अधिक हैं। तो उनकी निगाहमें ५ अवयवोंका प्रयोग करनेमें वचनाधिक्य नामका निग्रहस्थान होता है, लेकिन यौग ५ अवयवोंसे ही अनुमानकी सिद्धि मानते हैं। तो उनकी दृष्टिमें तीन अवयवोंका प्रयोग करनेपर न्यूनता नामका दोष होता है। दोष दोनों ही हैं—अधिक कहनेमें भी दोष है और कम कहने में भी दोष है। क्षणिकवादी ५ अवयवोंको अधिक मानता है तो यौग तीन रूपको न्यून मानते हैं। वही प्रयोग किसीकी दृष्टिमें अधिक है और किसीको दृष्टिमें न्यून है, तो जैसे क्षणिकवादियोंकी दृष्टिमें ५ अवयवोंका प्रयोग करने वालेके निग्रहस्थान बनता है तो यौगकी दृष्टिमें ३ अवयवोंका प्रयोग करने वालेके भी न्यून नामका निग्रहस्थान बनता है। वैसे तो इस विषयमें निर्णीत बात यह है कि अनुमानके अनिवार्य अङ्ग दो होते हैं प्रतिज्ञा और हेतु। प्रतिज्ञा और हेतुमेंसे कभी कोई अङ्ग कम हो जाय तो वह सिद्धिके लिए नही है और तब वे न्यूनवादी निग्रहके योग्य हैं अब दो अवयवोंके अतिरिक्त अधिक अवयव बोलना यह शास्त्रार्थ वादविवादके प्रसङ्गमें तो उचित नही है, क्योंकि वाद विवादके अधिकारी वे ही लोग होते हैं जो कि समर्थ हैं, प्रेक्षावान हैं, किन्तु जब किसीको समझाना हो, किसी शिष्यको कुछ बात बताना हो उस प्रसंगमें दो अवयवोंके अतिरिक्त और भी अवयव बताये जा सकते हैं। कोई पुरुष प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण इन तीनके प्रयोगसे ही समझ लेते हैं. कोई शिष्य चार अवयव सुनकर ही अवधारण कर लेते हैं और किसी शिष्यको ५ अवयव बताकर ही प्रतिपादन किया जा पाता है तो इसमें अनिवार्य तो दो ही अंग है प्रतिज्ञा और हेतु। प्रतिज्ञा नाम है पक्ष और साध्यके कहनेका। जैसे कहा कि इस पर्वतमें अग्नि है तो यह प्रतिज्ञा हुई। धूम होनेसे यह हेतु हुआ। इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, इतना कथन पर्याप्त हो जाता है अपने मंतव्यकी सिद्धि करनेके लिए, किन्तु जो मंदबुद्धि हैं, जो शिष्य नही समझ पा रहे हैं उनको इससे आगे बढ़कर व्याप्ति समझाना, व्याप्तिका दृष्टान्त देना और पक्षमें साधनका उपसंहार करना और फिर पक्षके साध्यको दुहराना ये सब बातें

Version 1

प्रयोगमें लायी जाती हैं और ऐसी स्थितिमें फिर अनुमानके ५ अवयवोंका प्रयोग इस प्रकार बन जाता है कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, जैसे कि रसोईघर। यह हुई अन्वय व्याप्ति और उसका दृष्टान्त। जहाँ जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ वहाँ धूम नहीं होता, जैसे तालाब, यह हुई व्यतिरेक व्याप्ति और उसका दृष्टान्त। और पर्वतमें धूम है यह हुआ उपनय। इस कारण पर्वत में अग्नि होनी चाहिए, यह हुआ निगमन निगमनके बाद फिर उस विषयको समझाने के लिए कुछ नहीं रह जाता है। तो इस तरह अनुमानके अवयव सम्पूर्ण ५ बताये गए हैं अब उनमें जो तीन रूप मानते हैं उनको न्यून दोष दे सकते। जो तीन रूप मानते हैं वे पंच अवयवके कहने वालेको वचनाधिक्य दोष दे सकते। तो यह हुई एक संघर्ष की बात। निर्णयकी बात यह है कि न्यून अथवा अधिक बोलनेसे जय पराजयकी व्यवस्था नहीं, किन्तु अपने पक्षकी सिद्धि कोई कर सके तो उसकी जय है और पक्षकी सिद्धि न कर सके तो उसकी पराजय है।

प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध हेत्वन्तर व प्रतिज्ञासन्यास की अज्ञानरूपता—योग सिद्धान्तमें जितने निग्रहस्थान बताये गए हैं विचार करनेपर उन सबका एक अज्ञानमें ही अन्तर्भाव होता है। जैसे कि प्रतिज्ञाहानिनामक निग्रह स्थानमें बताया है कि प्रतिवादीने जो प्रतिदृष्टान्तके विपरीत धर्म कहा है, जो वादी सिद्ध करना चाहता था उससे विपरीत साध्य बताया है और किसी कारण उस धर्म को वादी अपने दृष्टान्तमें मान ले तो प्रतिज्ञाहानि है तो इसमें और हुआ ही क्या? वादीको अपने पक्षका ज्ञान न रहा। तो वह भी अज्ञान है प्रतिज्ञा विरोध निग्रहस्थान में बताया है कि प्रतिज्ञा और हेतुका विरोध हो जाना ऐसी प्रतिज्ञा करे जिससे हेतु विरुद्ध हो, ऐसा हेतु दें जिससे कि प्रतिज्ञा विरुद्ध हो जाय तो यहाँ भी अज्ञान ही तो रहा। प्रतिज्ञा सन्यास निग्रहस्थानमें यह बताया गया है कि वादीने जो हेतु कहा उसमें प्रतिवादीने दूषण दिया तो वादी अपने साध्यका त्याग कर देता है। तो यह वादीका अज्ञान ही तो रहा। प्रथम तो उसे साधनका सही बोध न था और मान लो साधन सही लिया हो और किसी कारण बुद्धि भ्रान्त हो जाय और अपने ही साध्यका त्याग करके अपने पक्षसे उल्टी बात साधने लगे तो इस प्रतिज्ञा सन्यासमें अज्ञान ही तो रहा हेत्वन्तर निग्रहस्थान बताया है कि वादीने पहिले सामान्यतामें हेतु कहा था, उसका प्रतिवादीने खण्डन किया तो उसमें और विशेषण लगाकर विशेष हेतु बनाना चाहे तो हेत्वन्तर होता है। तो इसमें भी वादीका अज्ञान ही तो रहा। उसे सही ज्ञान न था कि जो हम हेतु कह रहे हैं यह हेतु अव्याप्त अथवा अतिव्याप्त हो जायगा इसीलिये तो विशेषण लगाकर हेतुको बदलना पड़ा तो वह भी एक अज्ञान ही है।

अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ व अपार्थकका अज्ञानमें अन्तर्भाव—अर्थान्तर निग्रहस्थानमें बताया है कि प्रकृत अर्थ जिसको कि सिद्ध करना चाहता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसमें उपयुक्त न बैठ सकें, अनुपयोगी हों ऐसे वचन बोलना अर्थान्तर निग्रहस्थान है। इसमें भी अज्ञान ही तो रहा। साध्यके साथ जिस हेतुकी सही व्याप्ति रह सके, ऐसे हेतुका उसे बोध न रहा तो यह भी अज्ञान ही है। निरर्थक निग्रहस्थान बताया है कि जिसका कोई अर्थ न हो, अथवा निरर्थक वचन कहे जा रहे हों तो वह निग्रहस्थान है। तो निरर्थक बोलनेमें वादीका अज्ञान ही तो सिद्ध हुआ। अविज्ञातार्थ निग्रहस्थानमें बताया गया है कि वादीने तो साधनको तीन बार कहा। लेकिन न परिषदके लोग उसका अर्थ समझ सके न प्रतिवादी समझ सका उसका अर्थ तो वहाँ अविज्ञातार्थ हो गया। अब इसमें अज्ञान तो रहा परिषदके लोगोंका और प्रतिवादीका लेकिन बाहरी निग्रहस्थानकी जबरदस्तीका प्रयोग कि अज्ञानकार तो रहे परिषदके लोग और प्रतिवादी लोग पर चूंकि उनकी संख्या अधिक है तो अकेले वादीपर दोष थापा जा रहा है और, इसे वादीका निग्रहस्थान बताया जा रहा है। अथवा तीन बार कहकर भी वादी यदि नही समझा सका है परिषदके लोगोंको या प्रतिवादीको तो वहां भी अज्ञान ही तो रहा। अपार्थक निग्रहस्थानमें बताया है कि पूर्वापर असंगत पदके उच्चारण करनेसे वाक्यार्थ न बन सके, वाक्यार्थ अप्रतिष्ठित रहे वह अपार्थक निग्रहस्थान है। यह भी अज्ञानसे कुछ बाहरकी बात नही है। वादीको पूर्वापर संगतिका ज्ञान ही नही है। और यों ही अनक्रमरहित बोल दिया तो वह भी अज्ञानसे अतिरिक्त और कुछ नही है।

अप्राप्तकाल, पुनरुक्त, अननुभाषण व अज्ञानकी अज्ञानरूपता— अप्राप्तकाल निग्रहस्थानमें बताया है कि अवयवोंका विपरीत प्रयोग वादी करदे तो वह अप्राप्तकाल है। यद्यपि ऐसे अप्राप्तकालसे भी विद्वान प्रतिवादी अर्थ समझ जाता है, लेकिन जनसाधारणकी दृष्टिसे मान लो अप्राप्तकाल हो गया तो इसमें अज्ञानकी ही बात है। दूसरा न समझ सकेगा तो वह दूसरेका अज्ञान है। और, ढंगसे न बोल सका तो वह वादीका अज्ञान है। अज्ञानसे अतिरिक्त और यह निग्रह क्या होता? पुनरुक्त दोषमें बताया है कि शब्द और अर्थका दुबारा कथन कर देना सो पुनरुक्त है। प्रथम तो भिन्न-भिन्न अर्थोंके प्रतिपादक शब्द हों तो उनके पुनः कथनमें पुनरुक्त दोष नही आता। और, कभी-कभी अर्थका भी पुनरुक्त हो जाय, लेकिन प्रतिपत्तिकी दृढताका प्रयोजन है तो वहाँ भी पुनरुक्त नही बनता। अथवा यदि पुनरुक्त बन जाय, मायने निरर्थक ही शब्द बोलदे तो वह भी अज्ञान ही तो रहा। अननुभाषण निग्रहस्थानमें बताया है कि वादीने तीन बार साधन बोला और उसको परिषदके सब लोग जान गए लेकिन प्रतिवादी उस वादीके कथनका दोष देनेके लिए प्रत्युच्चारण न कर सका, उस को कहकर दूषण देनेकी बात बताई जाती है ना, वह न कर सका तो अननुभाषण है, तो इसमें अज्ञान प्रतिवादीका रहा, लेकिन यह एक जबरदस्तीकी पराजय व्यवस्था है जो अज्ञान तो रहा प्रतिवादी वादीका तो यहाँ भी एक अज्ञानकी ही तो बात आ सकी एक अज्ञान नामका निग्रहस्थान बताया है जिसमें यह भाव बताया कि वादीके कथन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का अर्थ परिषदके लोग तो जान गए, लेकिन प्रतिवादी न जान सका तो प्रतिवादी यह कह रहा कि तुम्हारा कुछ स्पष्ट भाव ही न आया। कुछ जब समझें तब तो तुम्हारी बातका खण्डन करें। इस तरहका पोह करना वादीका निग्रह किए जानेकी बात है तो इसमें प्रतिवादीका अज्ञान ही तो रहा और उस अज्ञानके बलपर निग्रह करना चाहता है तो यह भी अज्ञानसे कुछ बाहर नही है।

अप्रतिभा पर्यनुयोज्योपेक्षण व निरनुयोज्यानुयोग व विक्षेपका अज्ञानमें अन्तर्भाव—अप्रतिभा निग्रहस्थानमें तो स्पष्ट लक्षण ही किया गया है कि उत्तरका ज्ञान न होना सो अप्रतिभा स्थान है। यह अज्ञान ही तो रहा। पर्यनियोज्योपेक्षण निग्रहस्थानका लक्षण बताया गया था कि वादी इस समय निग्रह प्राप्त होने को है। अर्थात् वादीकी कोई चूक ऐसी हो गयी जिससे दूषण बताकर उसकी पराजय की जा सकती है। किन्तु उस समय दूषणप्राप्त्‌ वादीका भी प्रनिग्रह कर देना, दूषण न बता सकना। उस मौकेसे चूक जाना यह पर्यनियोज्योपेक्षण है। अब इसमें चूक तो प्रतिवादीकी हुई है कि वादी दूषण प्राप्त हो रहा था, उसे छोड़ दिया तो प्रतिवादीका ही तो अज्ञान रहा। लेकिन इस समय प्रतिवादीकी हार होनेको थी तो प्रतिवादी इस छलका प्रयोग करता है कि वह दूषण इस परिषदके लोगोंको बताना चाहिए अथवा इस वादीको स्वयं अपनी कही हुई बातमें दूषणका ज्ञान नही है। ऐसा कहकर उसके निग्रह किए जानेकी बात कहे तो इसमें भी अज्ञानका हो तो दोष है निरनियोज्यानुयोग निग्रहस्थानमें यह बताया गया है कि वादी सावधान है, उसके वचन समर्थ हैं, उसके कहे हुए साधनमें को दोष नही है, फिर भी उसमें निग्रहस्थान की बात लाद देना यह निरन्योज्यानुयोग है। इसमें भी अज्ञानभाव ही रहा। और यह अज्ञान रहा प्रतिवादीका। विच्छेद नामक निग्रहस्थानका लक्षण किया है कि वादीने कोई साध्य अपना पक्ष रखा लिया तब समझ गया वादी कि हम इस पक्षको सिद्ध करनेमें समर्थ नही हैं, न कर सकेंगे तो वह कोई कार्यकी आवश्यकताकी बात कहकर उस प्रसंगको छोड़कर चला जानेको हुआ तो यह विपक्ष निग्रह कहलाया। इसमें भी वादीका अज्ञान ही तो रहा। अज्ञानके अतिरिक्त और इसमें दोष क्या ? अज्ञान ही तो वह दोष है।

मतानुज्ञा, न्यून, अधिक, अपसिद्धान्त व हेत्वाभास निग्रहस्थानोंका भी अज्ञानमें अन्तर्भाव—मतानुज्ञ निग्रहस्थानमें ऐसा प्रसंग बना कि वादीके पक्षमें प्रतिवादीने कोई दोष दिया, अब दोषको वादी दूर हैं तो न कर सका लेकिन उस दोष को प्रतिवादीके पक्षसे भी दुहरा दे तो यह मतानुज्ञा हुई। इसमें भी वादीका अज्ञान ही रहा। न्यून निग्रहस्थानमें बताया है कि जितने साधनका अंग बोलना चाहिए उससे कम बोल दे तो न्यून निग्रहस्थान है, प्रथम तो इसमें यह व्यवस्था कठिन है कि कितना कम बोलनेपर निग्रह बन गया, क्योंकि बुद्धिमान लोग कम बोलनेपर भी उसका अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जान जाते हैं और मान लो कि आवश्यकतासे कम बोल गया, जिसमें स्वपक्षीकी सिद्धि हो ही नही सकती है तो वह अज्ञानमें अन्तर्भूत होगा। अधिक नामके निग्रहस्थानमें भी यही बात है, जितने हेतु उदाहरण जो कुछ कहना चाहिए उसके अतिरिक्त और भी हेतु और उदाहरण बोल दे तो उसे अधिक नामक निग्रहस्थान बताया है। प्रथम तो इसमें यह बात है कि एक हेतु बोलना चाहिए कि उस जगह दो हेतु बोल दिया तो तो इसमें दोष क्या हुआ? जिस पक्षको सिद्ध करना चाहता था वादी उस पक्षको और प्रबलतासे सिद्ध कर देगा। और कदाचित मान लो कि साध्यकी सिद्धि होनेपर भी और अधिक समय लगा रहा है, बोल रहा है तो इसे अज्ञान कह लीजिए। अब सिद्धान्त निग्रहस्थानमें बताया गया है कि वादी जिस पक्षको स्वीकार करता है, जो पक्ष कहना चाहता उसीके कथनसे उसीका ही विरुद्धभाव सिद्ध हो जाय तो वह अपसिद्धान्त है। इस तरह है। इस अपसिद्धान्तमें भी वादीका अज्ञान सिद्ध हो रहा है। हेत्वाभासोंका निग्रहस्थान बताना भी सही है। हेत्वाभासको बताकर तो निग्रह किया ही जाता है। हार बताया ही जाता है किन्तु उनमें भी अज्ञान ही तो रहेगा। इस निग्रहस्थानके अतिरिक्त क्षणिकवादमें दो निग्रहस्थान बताये हैं एक असाधनाङ्गवचन —साधनके अंग न कह सकना यह भी ज्ञान ही है। दूसरा कहा है अदोषोद्भावन। वादीने साधनाभास बोला था, उसमें दोष कहा था, उन दोषोंको प्रतिवादी प्रकट न कर सका यह हुआ प्रतिवादीका निग्रहस्थान। इसमें भी उसका अज्ञान ही तो साबित हुआ। तो इन सब निग्रहस्थानोंमें एक अज्ञान ही बसा हुआ है। इन सबको अज्ञानमें अन्तर्भूत कर सकते हैं।

प्रमाण व प्रमाणाभासके वचनसे व दोष परिहार व दोषापरिहारमें भूषण व दूषणरूपता— अब यहां यह परखिये कि यह अज्ञान हुआ किस बातका? वादीको या प्रतिवादीका अज्ञान है। यह तो फलरूप कथन है। अज्ञान किस प्रकारसे है? कोन सा दोष है? उस चूकको बतानेसे ही तो अज्ञान साबित किया जा सकेगा, और वह चूक है हेत्वाभासरूप, जिसका कि पहिले वर्णन किया गया। तो अब इससे निष्कर्ष यह निकला कि वादीके साधनमें प्रतिवादी यदि दोष उपस्थित कर सकता है और उसे वादी दूर नही कर सकता तो वादीकी हार है और प्रतिवादीकी जीत है, और वादीने अपना पक्ष सिद्ध करनेके लिए निर्दोष प्रमाण उपस्थित किया है और उसमें प्रतिवादीने झूठा ही दोष उसमें घटित करना चाहा। और वादी उस दोषको कर दूर कर गया तो इसमें वादीकी जीत है और प्रतिवादीकी हार है। इस पद्धतिसे यह ही एक यथार्थ निर्णय है कि वादीने प्रमाण उपस्थित किया और प्रतिवादीने उसे दूषित रूपसे जाहिर किया और उसको दोषवादीने दूर कर दिया तो वह वादीका साधन बना और प्रतिवादीका दूषण बना। और यदि वादीने प्रमाणाभास बोला और उसमें प्रतिवादीने दूषित जाहिर किया तो उस दोषको वादी दूर न कर सका तो वह वादीके लिए साधनाभास है और प्रतिवादीके लिए भूषण है। इस ही दूषण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भूषणको इस ही साधन साधनाभासको जय पराजयके रूपमें ढाल दिया जाय तो यह पद्धति सही है लेकिन छल जाति निग्रह जैसी अनुचित पद्धतियोंको प्रयुक्त करके किसी की जबरदस्ती हार साबित करना यह कल्याणपथमें भूषण रूप बात नही है । वस्तु स्वरूपके परिज्ञानका प्रयोजन यह है कि अहितसे हटना और हितमें लगना । उस उद्देश्यको लेकर समर्थ वचन बोलना चाहिए । उससे ही जय और असमर्थ वचन यदि बोलता है तो उससे पराजय है । निष्कर्ष यह निकला कि भली प्रकार परीक्षा करके प्रमाणरूप वचन बोलना, परिज्ञान करना यह जिज्ञासुके लिए हितकारी प्रयोग है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com